भारत के शेयर बाजार

भारत के पूंजीपतियों के बीच, बुद्धिजीवी हलकों में और मध्य वर्ग के आम लोगों के बीच भी, विगत दिनों में देश के शेयर-बाजार काफी चर्चा का विषय रहे हैं। पहले इसलिये कि इनमें अप्रत्याशित एवं अभूतपूर्व उछाल रहा है और फिर मई 2006 के मध्य से इनमें तीखी गिरावट देखी गयी। इस परिघटना ने कइयों को पहले हर्ष और फिर तनाव की विरोधी मनोदशाओं में घसीटा। जिन लोगों ने शेयर-बाजार में पैसा लगा रखा हो, उनके लिए यह बिलकुल स्वाभाविक है। यदि किसी देश के शेयर बाजार 3 वर्षों की अल्प-अवधि में पहले करीब 400% चढ़ जाये और फिर हफ्ते-दस दिन में अचानक 16% से अधिक गिर जायें तो निवेशकों में ऐसी मनोदशाएं बिलकुल स्वाभाविक हैं। 26 मई 2003 को सेंसेक्स (मुंबई की स्टॉक एक्सचेंज में पंजीकृत चोटी की तीस कम्पनियों के शेयरों का संवेदी सूचक इंक) 3,050 पर था और 11 मई 2006 के दिन यह 12,671 पर बंद हुआ। ऐसे ही 26 मई 2003 के दिन निफ्टी (नेशनल स्टॉक एक्सचेंज में पंजीकृत चोटी की पचास कंपनियों के शेयरों का संवेदी सूचकांक) 967 पर था और 11 मई 2006 को यह 3,774 पर बंद हुआ। इस उछाल ने दीर्घ काल के लिए निवेश करने वाले सुस्त पिद्दी निवेशकों की पूंजी के आकार को भी तीन वर्षों की अल्प अवधि में 3-4 गुना बड़ा कर दिया था, बड़े तेज-तर्रार सांड़ों (तेजड़ियों) की तो बात ही क्या करनी। और फिर अचानक मुंबई शेयर बाजार का संवेदी सूचकांक (सेंसेक्स) अ पने 12,500 के ऊपर के स्तर से 10,000 से नीचे तक लुढ़क गया और निफ्टी भी इसी अनुपात में लुढ़का। अखबार चीखने लगे कि रातों-रात 6 लाख करोड़ रुपये की दौलत काफूर हो गयी! वैसे शेयर बाजार में उतरने वाला हर खिलाड़ी इस गिरावट पर मातम नहीं मना रहा था। शेयर बाजार के कई भालू (मंदड़िये) इस दौरान शैम्पेन की बोतलें खोल रहे थे, उन्होंने अरबों कमाये!

अधिकांश लोगों को विस्मित कर देने वाली इस परिघटना को समझने की कोशिशें अब भी हो रही हैं। शेयर-बाजारों के तमाम पेशेवर खिलाड़ी इसके विश्लेषण में ल गे हुए हैं। उन्हें आगे के लिए अपने रणकौशल तय करने हैं, अपने भावी नुकसानों को सीमित व सुरक्षित करना है और कमाई के नये रास्ते ढूंढने हैं। तमाम बुद्धिजीवी और पूंजीपति वर्ग की साझी संस्थाएं मसलन रिजर्व बैंक या सेबी इसके विश्लेषण में इसलिए लगे हुए हैं क्या ेंकि उन्हें देश के वित्तीय तंत्र में स्थायित्व पैदा करना है। ये व्यक्ति या सामूहिक संस्थायें पूंजीवाद की दीर्घायु के प्रति फिक्र-मंद हैं और वे इसके वित्तीय तंत्र में सुधार करके इसकी आंतरिक कमजोरियों/अराजकता के स्रोतों को समाप्त कर देना चाहते हैं।

इन से उल्टी अवस्थिति रखने वालों, इसके विपरीत सरोकार रखने वालों के लिए भी यह जरूरी है कि वे इस परिघटना को समझने का प्रयास करें। सर्वहारा एवं मेहनतकश वर्गों की कतारें इस परिघटना के प्रति तटस्थ रुख अपनाने की गलती इसलिए नहीं कर सकती हैं क्योंकि इस विशाल जुआघर मे ं जो दौलत इस्तेमाल की जाती है वह इन्हीं वर्गों के प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष शोषण की बदौलत अस्तित्व में आती है। सर्वहारा के ऐतिहासिक मिशन को आगे बढ़ाने के लिए, उसके उद्वेलन व प्रचार की धार को तराशने के लिए तो इस परिघटना का विशलेषण जरूरी है ही। मगर यह इसलिए भ ी जरूरी है क्योंकि शेयर-बाजारों में संचित मृत-श्रम की गतियों-उप गतियों का प्रभाव मेहनतकश वर्गों के तात्कालिक जीवन पर हजारों तरीकों से पड़ता है। 'लंदन मेटल एक्सचेंज' में गिरावट कोयले एवं लोहे की खानों के मजदूरों को बेरोजगार करने से लेकर लगभग हर ज गह वेतन-गिरावट को प्रोत्साहित करती है या फिर किसी गरीब किसान को इस परिघटना का एहसास तब होता है जब खेत में खड़ी उसकी पकी फसल की कीमत यकायक आधी हो जाती है। ऐसी स्थिति में सर्वहारा के प्रतिनिधियों के लिए यह जरूरी हो जाता है कि वे-शेयर बाजारों के ढ ांचे व संघटन का अध्ययन करें, शेष अर्थव्यवस्था एवं शेयर-बाजार के अंतरसम्बंध की जांच करें, उन कारकों/शक्तियों को चिह्नित करें जिन्होंने शेयर बाजार के विगत दिनों के उछाल व गिरावट में योगदान किया, शेयर बाजारों एवं समग्र वित्तीय तंत्र में संभावित सुधारों एवं उनके असर का अध्ययन करें ... और समग्रता में इस परिघटना का विश्लेषण करके सर्वहारा के क्रांतिकारी प्रचार व उद्वेलन को पैना बनायें। इस परिघटना को संज्ञान में लेने और इसके विश्लेषण से किनाराकशी का अर्थ होता है सर्वहारा एवं अन्य मेहनतकश वर्गों की कतारों क ो पूंजीवादी प्रचार के झूठ, भ्रमों एवं पूर्वाग्रहों के जाल में उलझे रहने देना।

21वीं सदी में शेयर बाजार कारोबार

1895 में "पूंजी, खण्ड-3 का अनुपूरक" लिखते समय एंगेल्स ने लिखा :

"1. पूंजीवादी उत्पादन में शेयर-बाजार की स्थिति सामान्य रूप में खण्ड-3, भाग -5 विशेषकर अध्याय (27 - सं) से स्पष्ट है। लेकिन 1865, जब यह पुस्तक लिखी गयी थी, के बाद एक ऐसा अंतर आ गया है, जो आज शेयर बाजार को कहीं अधिक और लगातार बढ़ती भूमिका प्रदान करता जाता है, और जो अपने विकास के साथ-साथ समस्त, औद्योगिक और ऐसे ही कृषिजन्य, उत्पादन, और सारे वाणिज्य, संचार साधनों और ऐसे ही विनिमय के कृत्यों को भी बाजार के कर्ता-धर्ताओं के हाथों में संकेन्द्रित करता जाता है, जिससे शेयर बाजार स्वयं पूंजीवादी उत्पादन का सबसे प्रमुख प्रतिनिधि बन जाता है।

" 2 -1865 में शेयर बाजार पूंजीवादी व्यवस्था में अभी एक गौण तत्व ही था। सरकारी बांड अधिकांश विनिमय प्रतिभूतियों को द्योतित करते थे और उनका कुल योग भी अभी अपेक्षाकृत कम ही था। इसके अलावा, संयुक्त पूंजी बैंक भी थे, जिन्हें महाद्वीप और अमेरिका में तो प्रमुखता प्राप्त थी और जिन्होंने इंगलैण्ड में भी अभिजात निजी बैंकों को आत्मसात करना अभी शुरू ही किया था, किन्तु en masse (समूचे तौर पर) जो अभी अपेक्षाकृत महत्वहीन ही थे। रेलों के शेयर आज की तुलना में अब भी अपेक्षाकृत कमजोर थे। ज्वाइंट स्टॉक कम्पनी के रूप में अब भी बहुत कम ही प्रत्यक्षतः उत्पादन प्रतिष्ठान थे-और, बैंकों की ही भांति, वे सबसे अधिक निर्धनतर देशों-जर्मनी, ऑस्ट्रिया, अमेरिका, आदि-में ही थे। "कर्ता की आंख" अब भी एक सर्वव्यापी अंधविश्वास थी।

" उस समय शेयर-बाजार अभी वह जगह ही था, जहां पूंजीपति एक दूसरे की संचित पूंजी को छीनते थे और जिसका श्रमिकों से सिर्फ पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के सामान्य भ्रष्टकर प्रभाव के एक नये प्रमाण और इस कात्विनी सिद्धान्त की पुष्टि के नाते ही सरोकार था कि पूर्वविधान (उर्फ़ मौका) इस जीवन में भी सौभाग्य और दुर्भाग्य, संपन्नता, अर्थात आनंद और शक्ति, और विपन्नता, अर्थात निर्धनता और दासता का निर्धारण करता है।

3 - अब बात दूसरी है। 1866 के संकट के बाद से संचय लगातार बढ़ती तेजी के साथ होता रहा है, जिससे किसी भी औद्योगिक देश में, इंगलैण्ड में तो और भी, उत्पादन का प्रसार संचय के प्रसार का साथ नहीं दे सका है, या एकल पूंजीपति के संचय का स्वयं अपने व्यवसाय को बढ़ाने में उपयोग नहीं किया जा सका है; मसलन, 1845 में भी इंगलैण्ड का सूती उद्योग; रेलों के घोटाले। इस संचय के साथ rentiers (किराया जीवियों-सं.), उन लोगों की संख्या भी बढ़ती गयी, जो व्यवसाय के नियमित तनाव से आजिज आ गये थे और इसलिए अपने को कंपनियों के निदेशकों अथवा शासकों के नरम धंधों से ही बहलाना चाहते थे। और तीसरे, द्रव्य-पूंजी (Money Capital-सं.) के रूप में तिरती इस राशि के निवेश को सुगम बनाने के लिए वहां भी सीमित-देयता कम्पनियों के नये विधिक रूपों की स्थापना की गयी, जहां अभी तक ऐसा नहीं किया गया था, और अंशधारी की देयता को भी, जो पहले असीमित थी, + - [ज्यादा या कम] घटा दिया गया। (1890 में जर्मनी की संयुक्त पूंजी कम्पनियां। अभिदान 40 प्रतिशत!)।

" 4 - तदुपरांत उद्योग का संयुक्त पूंजी कंपनियों में क्रमिक रूपांतरण । एक के बाद दूसरी शाखा की यही गति होती है। सबसे पहले लौह उद्योग में ... ... इसके बाद ट्रस्ट, जो संयुक्त प्रबंध के अधीन विराट उद्यमों की स्थापना करते हैं। (जैसे युनाइटेड एल्कली)। साधारण अकेली फर्म अधिकाधिक व्यवसाय को उस बिंदु पर लाने की प्रारंभिक मंजिल ही होती चली जाती है, जहां वह इतनी बड़ी हो जाती है कि 'संस्थापित' हो सके।

" इसी प्रकार व्यापार में भी है ... ... सभी संस्थापित ही हैं। खुदरा भंडारों में भी अब यही देखा जाता है ... ।

" इसी प्रकार इंगलैंड तक में बैंक तथा अन्य उधार प्रतिष्ठान। बेशुमार नये बैंक, सभी के शेयर परिसीमित। ... ...

" 5 - कृषि के क्षेत्र में भी ऐसा ही है। अत्यधिक विस्तारित बैंक, ... अधिकाधिक बंधकधारी होते जा रहे हैं; उनके शेयरों के साथ भू-सम्पत्ति का वास्तविक उच्च स्वामित्व शेयर बाजार को अंतरित हो जाता है...।

" 6 - सारा विदेशी निवेश अब शेयरों के रूप में है। ... ...

" 7 - फिर उपनिवेशन। आज यह विशुद्धतः शेयर बाजार का पूरक है, जिसके हितार्थ यूरोपीय शक्तियों ने कुछ साल पहले अफ्रीका का विभाजन ... ... ।" (पूंजी खण्ड - 3, प्रगति प्रकाशन, मास्को, 1988; पृष्ठ -797-798, जोर मूल में)

1895 में एंगेल्स जिस यथार्थ को संज्ञान में लेते हैं, वह यह है कि शेयर बाजार जो 1865 में पूंजीवादी उत्पादन में गौण तत्व था वह 30 वर्षों के भीतर पूंजीवादी उत्पादन का सबसे प्रमुख प्रतिनिधि बन जाता है, कि सीमित देयता

कंपनियां अस्तित्व में आती हैं और वैधानिक स्वीकार्यता पाती हैं, कि उद्योग क्रमशः संयुक्त-पूंजी कंपनियों के मालिकाने में संगठित होने लगता है, कि उद्योग की भांति व्यापार एवं कृषि भी क्रमशः इनके नियंत्रण में आते जाते हैं, कि किराया जीवियों (rentiers) का बिलकुल नया संस्तर पूंजीपति वर्ग के मध्य उभरता है और शेयर बाजार के हित उपनिवेशवादी कब्जेदारी की प्रेरक शक्ति बन जाते हैं। एंगेल्स की नजर में 1895 आते-आते न केवल शेयर बाजार की भूमिका बढ़ चुकी थी बल्कि उसे लगातार और बढ़ना था। एंगेल्स की भविष्यवाणी कितनी सही थी, इसकी झलक हमें बसंत 1916 में लेनिन द्वारा लिखी पुस्तक 'साम्राज्यवाद, पूंजीवाद की चरम अवस्था' पढ़ने पर मिलती है। इस पुस्तक में लेनिन लिखते हैं :

" इसके अतिरिक्त साम्राज्यवाद का अर्थ है कुछ थोड़े से देशों में मुद्रा-पूंजी (Money Capital) का विपुल संचयन, जैसा कि हम देख चुके हैं, यह संचयन सिक्यूरिटियों के रूप में 100-150 अरब फ्रांक तक होता है। इसलिए किरायाजीवियों के एक वर्ग की, बल्कि कहना चाहिए, एक सामाजिक स्तर की, अर्थात ऐसे लोगों की असाधारण रूप से वृद्धि होती है, जो "कूपन काट कर" अपनी जीविका कमाते हैं, जो किसी भी उद्यम में कोई हिस्सा नहीं लेते हैं, जिनका पेशा ही हरामखोरी होता है। पूंजी का निर्यात, जो साम्राज्यवाद का एक सबसे बुनियादी आर्थिक आधार है, किरायाजीवियों को उत्पादन व्यवस्था से और भी पूरी तरह अलग कर देता है और पूरे देश पर, जो समुद्र पार के कई देशों तथा उपनिवेशों के श्रम का शोषण करके जीवित रहता है, परजीविता की मुहर लगा देता है। (लेनिन, 'साम्राज्यवाद, पूंजीवाद की चरम अवस्था', संकलित रचनाएं - दस खंडों में, खंड -5, प्रगति प्रकाशन, मास्को1982, पृष्ठ-324-325, शब्दों पर जोर हमारा)

कुछ थोड़े से देशों में मुद्रा-पूंजी के विपुल संचय की बदौलत अस्तित्व में आये 'किरायाजीवी' पूंजीपतियों के 'सामाजिक स्तर' के कारोबार का जो अन्दाजा लेनिन देते हैं वह इस प्रकार है-

" किरायाजीवियों की आय संसार के सबसे बड़े "व्यापारी" देश के विदेश व्यापार से होने वाली कुल आय से पांच गुनी अधिक है! यह है साम्राज्यवाद तथा साम्राज्यवाद के परजीवी स्वभाव का निचोड़ ।" (वही, पृष्ठ -326, जोर मूल में)

एंगेल्स की समीक्षा के दो दशक बाद की गयी इस समीक्षा में जहां लेनिन 'मुद्रा-पूंजी के विपुल संचय' की बदौलत 'कूपन काट कर' जीने वाले 'किराया जीवियों' के संस्तर की असाधारण वृद्धि को संज्ञान में लेते हैं, वहीं इस पुस्तक में वे मूलतः इस बात को स्थापित करते हैं कि 20 वीं सदी की शुरूआत से पूंजीवाद अपने विकास की एक नयी मंजिल (उच्चतम मंजिल) में दाखिल हो चुका है जिसमें पूंजी का इस हद तक संकेन्द्रण हो चुका है कि इजारेदारियां अस्तित्व में आ गयी हैं और पूरा पूंजीवादी तंत्र वित्तीय पूंजी के अधीन आ चुका है। इस पुस्तक में लेनिन वित्त पूंजी के हितों का, उसके कारोबार का, उसके द्वारा प्रयोग किये जाने वाले उपकरणों का, उसकी मारक क्षमता या प्रभाव का, उसके परोपजीवी चरित्र का एक खाका खींचते हैं। लेनिन की इस समीक्षा के नौ दशक बाद निस्संदेह वित्त पूंजी की संरचना, उसके द्वारा प्रयोग किये जाने वाले उपकरणों, उसके चरित्र इत्यादि में अनेक परिवर्तन आये हैं जिनका गहरायी में अध्ययन 21 वीं सदी की क्रांतियों की मांग है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अस्तित्व में आये राष्ट्रपारी-निगमों (Trans national Corporation) या विश्व पूंजीवाद के संचालन एवं विकास के लिए खड़ी की गयी बहु-देशीय संस्थाएं मसलन विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व व्यापार संगठन या महाद्वीपीय आर्थिक संघों इत्यादि की चर्चा हम यहां प्रसंगवश ही करेंगे। विगत दिनों में कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों ने 21 वीं सदी के साम्राज्यवाद का समग्रता में अध्ययन करने की कोशिशें की हैं। हम यहां अपना ध्यान वित्त-पूंजी के समग्र ताने-बाने के उस हिस्से पर ही केन्द्रित रखेंगे जो कि स्टॉक एक्सचेन्जों से सम्बन्धित है। चूंकि 21 वीं सदी के पूंजीवाद में अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों (और एक क्षेत्र के विभिन्न पक्षों के बीच भी) में अन्तर्गुंफन बहुत ज्यादा है इसलिए ऐसा पृथक्करण काफी मुश्किल होता है, मगर चूंकि किसी भी विश्लेषण के लिए यह अनिवार्य होता है अतः हम इस काम में हाथ डालेंगे।

21 वीं सदी की स्टॉक एक्सचेन्जें, 20 वीं सदी की स्टॉक एक्सचेन्जों से गुणात्मक अर्थों में भिन्न नहीं हैं। अपने गुणात्मक अर्थों में लेनिन की नौ दशक पुरानी समीक्षा 21 वीं सदी की स्टॉक एक्सचेन्जों का वस्तुपरक खाका खींचती है। ये मुद्रा-पूंजी के विपुल संचय की अभिव्यक्तियां हैं। ये कूपन काटकर जीने वाले हरामखोरों की संस्थाएं हैं, ये साम्राज्यवााद के परोपजीवी चरित्र एवं सड़ांध की गवाह हैं... । मगर इस गुणात्मक समानता के बावजूद 21 वीं सदी की स्टॉक एक्सचेन्जों में कुछ ऐसे मात्रात्मक तत्व हैं जो कि पहले या तो अस्तित्वमान ही नहीं थे या जिनकी अहमियत आज जैसी नहीं थी। इन्हें संज्ञान में लेना जरूरी है।

लेनिन के जमाने की स्टॉक-एक्सचेन्जों में मूलतः प्रतिभूतियों की खरीद-फरोख्त होती थी। अर्थात वहां सरकार द्वारा जारी दीर्घकालिक एवं अल्पकालिक ऋण-पत्रों का व्यापार होता था, या फिर कंपनियों के विभिन्न प्रकार के शेयरों अथवा कम्पनी ऋण-पत्रों की खरीद फरोख्त होती थी। स्टॉक एक्सचेन्ज के कारोबार के ये ही वित्त-उपकरण (Financial instruments) होते थे। मुद्रा, हुण्डियां अथवा 'बदले' उक्त वित्त-उपकरणों के व्यापार को सम्भव बनाते थे। वे अपने आप

में वित्त उपकरण नहीं बने थे। व्युत्पन्न वित्त उपकरणों (derived financial instruments) मसलन (स्वैप्स Swaps), भाति-भांति के फ्यूचर्स (futures) या भांति-भांति के ऑप्सन्स (options) का तो आविष्कार ही नहीं हुआ था। उस जमाने में केवल पण्य-फ्यूचर्स (commodity Futures) ईजाद हुआ था और इनकी भी सीमित मात्रा स्वीकार्य होती थी। उस जमाने की स्टॉक स्क्सचेन्जें आज की स्टॉक एक्सचेन्जों की अपेक्षा बहुत कम जटिल संस्थाएं होती थीं। राष्ट्रीय सरकारों से इनका वैसा जुड़ाव भी नहीं था जैसा आज है। ये शेयर बाजार के दलालों की निजी संस्थाएं होती थीं और इनके संचालन से सरकारें प्रत्यक्षतः दूर रहती थीं। आज सरकारें या तो स्वयं इनका गठन करती हैं या फिर इनके नियंत्रण के लिए विशेष बोर्ड या प्राधिकरण नियुक्त करती हैं। जरूरत पड़ने पर सरकारें (या उनके केन्द्रीय बैंक एवं सरकार के नियंत्रण में अन्य वित्त संस्थाएं) इनमें पैसा उड़ेल कर या इनमें से पैसा खींच कर या अन्य तौर तरीकों से इन्हें स्थायित्व प्रदान करती हैं और इनके विकास को प्रोत्साहित करती हैं। लेनिन के जमाने में स्टॉक एक्सचेन्जों एवं राष्ट्रीय-सरकारों का रिश्ता इस तरह से संस्थागत नहीं था ।

विपुल मात्रा में संचित हो रही मुद्रा-पूंजी, जिसका निवेश मुनाफा देने वाली उत्पादक गतिविधियों में सम्भव नहीं था, ने 80 व 90 के दशक में भांति-भांति के व्युत्पन्न वित्त-उपकरणों (Derivatives) को जन्म दिया। ये पूंजीवाद/साम्राज्यवाद की बढ़ी हुई परजीविता की अभिव्यक्तियां हैं। लेनिन के जमाने का किरायाजीवी यद्यपि उत्पादन से कटा हुआ समुद्र पार रहने वाला पूंजीपति होता था मगर वह तब भी किन्हीं प्रतिभूतियों का मालिक होता थाः अर्थात् वह या तो किसी निश्चित उद्यम में अंशधारी होता था या फिर कोई निश्चित सरकार अथवा उद्यम उसकी कर्जदार होती थी। आज के डेरिवेटिव्ज ऐसे निरवैयक्तिक पत्र भी नहीं हैं। वे तो शेयरों, ऋण-पत्रों, मुद्रा-विनिमय दरों, पण्य-दामों, संवेदी सूचकांकों को आधार मानकर व्युत्पन्न उपकरण हैं। उदाहरण के लिए कोई पूंजीपति 15 करोड़ डालर के मुद्रा-फ्यूचर इस अनुबंध पर खरीद सकता है कि बेचने वाला ठीक तीन महीने बाद 1.5 डालर के बदले में एक यूरो देगा। इस अनुबंध के तहत तीन माह बाद 15 करोड़ डालर के बदले 10 करोड़ यूरो दिये जाने हैं। तीन माह बाद पूर्व निश्चित तिथि पर यूरो व डालर के तत्कालीन अनुपात एवं अनुबंध में तय रकम के बीच का जो भी अंतर होगा वह एक पूंजीपति दूसरे को देगा। फ्रैंकफर्ट या न्यूयार्क के स्टॉक-एक्सचेंज इस अनुबंध में 'गारंटर' की भूमिका अदा करेंगी और इस सेवा के लिए अनुबंध का एक अंश अपनी जेब में डालेगी। यहां महत्वपूर्ण बात यह है कि इस सौदे में आधारभूत उपकरण (डालर एवं यूरो) की कतई अदला-बदली नहीं होगी। दोनों पूंजीपति, स्टॉक एक्सचेंज (एवं कर वसूलने वाली सम्बन्धित सरकार) पूरे सौदे के लेन देन (अन्तरों-Margins) को किसी भी एक मुद्रा - डालर, येन अथवा रूबल में भी, में निपटा कर अपना-अपना रास्ते नापेंगे और किसी के पास भी दरअसल एक भी यूरो नहीं हो सकता है। इसी तरह मुंबई स्टॉक-एक्सचेंज में कोई पूंजीपति 10 करोड़ रुपये का इस बात का "कॉल-ऑप्सन" खरीद सकता है कि अगले महीने की 25 तारीख को रिलायंस इंडस्ट्रीज का एक शेयर वह 970 रूपये में खरीदेगा। इस "कॉल ऑप्सन" के तहत यदि पूर्व निर्धारित तारीख को रिलायंस के शेयर के बाजार दाम 970 से अधिक हुए मसलन 972 तो "कॉल ऑप्सन" खरीदने वाले पूंजीपति को 2,06,186 रूपये [(10,00,00,000 /970) X (972 - 970) = 2,06,186] मिल जायेंगे और यदि रिलायंस के शेयर के दाम 970 से कम रहते हैं तो उसे केवल 10 करोड़ की "कॉल ऑप्सन" की खरीद में लगा पैसा गवाना पड़ेगा। यहां भी गौर करने की मुख्य बात यह है कि "कॉल ऑप्सन" बेचने वाले के लिए यह जरूरी नहीं कि उसके पास रिलायंस की एक भी प्रतिभूति हो। अर्थात् डेरिवेटिव्ज का पूरा कारोबार एक ऐसी अधिरचना है जो संवेदी-सूचकांकों के स्तर, पण्य-दामों, मुद्रा विनिमय दरों, ऋण-पत्रों एवं शेयरों के दामों के परिवर्तनीय आधार पर निर्मित है। डेरिवेटिव्ज के अपने विलक्षण चरित्र से ही हमें इस बात का एहसास हो जाता है कि लेनिन के जमाने की तुलना में आज स्टॉक एक्सचेंजें कैसे बढ़ी हुई परजीविता को अभिव्यक्त करने लगीं हैं।

एक के बाद एक नये-नये डेरिवेटिव्ज का अस्तित्व में आना ही स्टॉक-एक्सचेंजों की संरचना में बहुत कुछ नया जोड़ता जाता है। परन्तु लेनिन के जमाने की स्टॉक-एक्सचेंज और 21 वीं सदी की स्टॉक-एक्सचेंज के बीच का अंतर इससे कहीं ज्यादा है। 21 वीं सदी की अधिकांश बड़ी स्टॉक-एक्सचेंजों में प्रतिभूतियों (Securities) के कारोबार की तुलना में डेरिवेटिव्ज के प्रवर्ग में होने वाला कारोबार कहीं बड़ा हो चुका है। भारत जैसे पिछड़े पूंजीवादी देश की दोनों बड़ी स्टॉक-एक्सचेंजों (बम्बई स्टॉक एक्सचेंज एवं नेशनल स्टॉक एक्सचेंज) में होने वाले कारोबार के लिए यह परजीविता यथार्थ बन चुकी है (देखें तालिका-1)। दुनिया की किन्हीं बड़ी स्टॉक-एक्सचेंजों में अगर प्रतिभूतियों का कारोबार अब भी प्रधान पहलू है तो इसका कारण यह नहीं है कि उस देश में पूंजी का चरित्र ज्यादा स्वस्थ है बल्कि यह है कि उस देश की सरकार अपनी स्टॉक-एक्सचेंजों में स्थायित्व की आशंका से अभी किन्हीं चंचल डेरिवेटिव्ज या सभी डेरिवेटिव्ज में व्यापार की छूट नहीं देती हैं। वैसे 21 वीं सदी की बड़ी व महत्वपूर्ण स्टॉक-एक्सचेंजों का आम लक्षण यही

है कि इनमें प्रतिभूतियों की खरीद-फरोख्त गौण बात हो चुकी है और डेरिवेटिव्ज व्यापार उनके कारोबार का मुख्य पहलू हो चुका है।

तालिका -1

कारोबार के आकार की वृद्धि (करोड़ रुपये में)

वर्ष	2002	2003	2004	2005
NSE प्रतिभूतियां	724,322	907,882	1,070,298	1,388,112
BSE प्रतिभूतियां	332,913	409,373	529,704	701,024
NSE डेरिवेटिव्ज	345,443	1,350,610	2,586,738	3,926,843
BSE डेरिवेटिव्ज	928	9,103	19,173	19,652

स्रोत : Economic Survey, 2005-06, GOI, Page- 71

दुनिया के महत्वपूर्ण स्टॉक एक्सचेंजों के कारोबार में उक्त महत्वपूर्ण परिवर्तन (डेरिवेटिव्ज का अस्तित्व में आना और कारोबार में प्रमुखता ग्रहण करना) के साथ ही साथ एक बात यह हुई है कि दुनिया की स्टॉक-एक्सचेंजें एक दूसरे से प्रत्यक्षतः अंतरसम्बंधित होती गयीं हैं। दूरसंचार साधनों की गुणवत्ता में अभूतपूर्व विकास और सरकारों की वैश्वीकरण-परस्त नीतियों ने इसे संभव बनाया है। अंतरगुम्फन की यह प्रक्रिया कितनी आगे बढ़ गयी है, इसका अंदाज एक तो इस तथ्य से लगाया जाता है कि यदि अमरीका में यह अफवाह फैलती है कि फेडरल रिजर्व बोर्ड ब्याज दरें बढ़ा रहा है तो तुरंत उभरते हुए बाजारों (Emerging Markets) में गिरावट दर्ज की जाती है, या फिर यदि 'लंदन मेटल एक्सचेंज' (LME) में लोहे के दाम गिरते हैं तो तत्क्षण ही टाटा स्टील अथवा हिन्डालको जैसी कम्पनियों के शेयर-दाम गिरने लगते हैं। वैसे प्रभाव-समय (Effect time) से स्वतंत्र आर्थिक संदर्भों में भी इस अंतरगुम्फन के स्तर का मोटा-मोटा अंदाज लगाया जा सकता है। 1998 में पूरी दुनिया का सकल वार्षिक उत्पाद 280 खरब डालर के करीब था। उस समय माल और सेवाओं का सालाना वैश्विक निर्यात करीब 66 खरब डालर (52 खरब डालर का माल निर्यात और करीब 13 खरब डालर की सेवाओं का निर्यात) था। 'बैंक फॉर इंटरनेशनल सेटलमेन्ट्स' दुनिया की विदेशी मुद्रा मंडियों पर नजर रखता है। उस वक्त उसने रिपोर्ट दी कि दुनिया में एक औसत कारोबारी दिन के पूरा होते-होते 15 खरब डालर की विदेशी मुद्रा एक हाथ से दूसरे में हस्तांतरित हो जाती है यानी कि विदेश व्यापार के लिए जितनी विदेशी मुद्रा चाहिये वह तो साल भर में साढ़े चार दिन के विदेशी मुद्रा हस्तांतरण से पूरी हो जाती है। यदि विदेशी मुद्राओं के जरिये निवेश को भी गणना में समेट लिया जाय और गणना की सरलता के लिए यह भी मान लिया जाय कि समस्त प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) नई परिसम्पत्तियां खड़ी करने में लग रहा है, तब भी यह साल भर में एक दिन के विदेशी मुद्रा हस्तांतरण से अधिक नहीं है। अर्थात् दुनिया-भर में, वर्षभर में, विदेशी मुद्राओं का जितना कारोबार होता है उसमें में से मात्र हफ्ते भर की राशि से दुनिया का समस्त विदेश व्यापार एवं विदेशी-निवेश निपट जाता है। तब शेष राशि का उपयोग कहां होता है? शेष राशि दुनिया की स्टॉक-एक्सचेंजों की सट्टेबाजी के कारोबार की गणना है!!

सट्टेबाजी, पूंजीवाद के लिए कोई नई परिघटना नहीं है। यह मार्क्स के जमाने से या उसके भी पहले से चली आ रही है। जो बात उल्लेखनीय है वह है वास्तविक उत्पादन, वास्तविक व्यापार व वास्तविक निवेश के सापेक्ष इसका वर्तमान वृहद आकार और इसका राष्ट्रपारी चरित्र। 21 वीं सदी की सट्टेबाज ट्रस्ट कम्पनियां, शेल कम्पनियां, हेज फंड, ब्रोकरेज हाऊस ... बनाकर पूरी दुनिया के फलक पर अपना कारोबार करते हैं। ये सामान्यतः 'ऑफ-शोर-सेन्टर्स' (OFC's) को आधार बनाकर अपना वैश्विक कारोबार करते हैं। आज दुनिया में ऐसे ऑफ-शोर-सेंन्टर्स की गिनती 70 से अधिक है (मॉरिशस, जिसके साथ भारत सरकार नो-डबल-टैक्सेशन-ट्रीटी में बंधी है, भी इनमें से एक है)। ऑफ-शोर-सेन्टर्स् की सामान्य विशेषतायें ये होती हैं कि वित्तीय फर्मों/संस्थाओं एवं कम्पनियों का यहां तुरन्त पंजीकरण हो जाता है, यहां की सरकारें ऐसे वैश्विक कारोबारियों से कोई कर नहीं वसूलती हैं, यहां विदेशी मुद्राओं की पूर्ण परिवर्तनीयता होती है, यहां पूंजी के आकार एवं ग्राहकों से सम्बन्धित जानकारियां प्रदान करने की कोई बाध्यताएं नहीं होती हैं और यहां के बैंक स्विटजरलैंण्ड मार्का गोपनीयता का पालन करते हैं। वित्त-पूंजी के अन्तराष्ट्रीय ताने-बाने के ऐसे अड्डों से ही जॉर्ज सोरोस [1] जैसे बाजीगर अपने खेल खेलते हैं। स्टॉक-एक्सचेंजों में विनिमय होने वाले तरह-तरह के डेरिवेटिव वित्त-उपकरणों के जरिये होने वाली यह वृहत एवं राष्ट्रपारीय सट्टेबाजी उस अत्यधिक पतन, परजीविता एवं सड़ांध की अभिव्यक्ति है जो कि 21 वीं सदी में साम्राज्यवाद में निहित हैं।

शेयर-बाजारों की संरचना एवं चरित्र में आये इन महत्वपूर्ण परिवर्तनों पर जब हम गौर करते हैं तो ऐसा प्रतीत होने लगता है कि शेयर बाजारों का जीवन (उनकी अपनी गति) ऐसा हो चुका है कि वह समाज में वास्तविक उत्पादन से स्वतंत्र हो चुका है। कई दफा ऐसा भी लगता है कि शेयर बाजरों में ही पूंजी का विकास हो रहा है और शेष समाज में पूंजी निर्माण गौण बात हो चुकी है। ये निष्कर्ष ठीक नहीं हैं। इसमें बहस नहीं है कि 21 वीं सदी में शेयर-बाजार विशाल जुआघर हो गये हैं। मगर ये कोई सामान्य जुआघर नहीं है जिनमे जुआरी अपनी धन-दौलत हार के चला आता है। इन जुआ घरों में उतरने वाले भांति-भांति के संस्थागत निवेशक मसलन विभिन्न प्रकार के बैंक, गैर बैंकिग वित्तीय संस्थायें, म्यूचल फंड, हेजफंड [2], दलाल-कम्पनियां ... दरअसल दूसरों का पैसा लेकर इस जुए में उतरते हैं। कुछ मात्रा में अपनी पूंजी के साथ-साथ इनके पास मूलतः करोड़ो छोटे बचत धारियों का पैसा होता है जिन्हें ये विभिन्न तीन-तिकड़म से उधार लेकर शेयर-बाजारों के रोमांच का मजा लेने उतरतें हैं। यह पैसा जर्मनी के किसी बुजुर्ग मजदूर के पेंशन-फंड से उसकी गैर -जानकारी में एक दलाल-घराने द्वारा उधार लिया हुआ पैसा हो सकता है या फिर भारत की किसी गरीब अध्यापिका की बीमा पॉलिसी से हस्तांतरित किया गया धन। इसलिए जब कोई दलाल घराना शेयर-बाजार में पिटता है तो पेशंन-फंड सूख जाता है और सीमित-देयता वाली बीमा-कम्पनी के निदेशक उसे दिवालिया घोषित कर अपनी गाड़ी में सवार हो जाते हैं; बस मेहनतकश जनता अनजाने में लुटकर रोती रह जाती है। कुल बात यह कि 'वित्तीय पूंजी के जुआघरों में खेले जाने वाले जुए के नाकारात्मक प्रभाव समाज में बहुत नीचे तक, और कई बार तो बढ़ती हुई तीक्ष्णता के साथ, महसूस किये जाते हैं। ऐसे मौकों पर ज्यादा महत्वपूर्ण प्रश्न यह नहीं होता है कि भूकम्प कितना शक्तिशाली था बल्कि यह कि किस का मकान कितना मजबूत था। अतः वित्त पूंजी शेष समाज से स्वतंत्र होने के बजाय, उसके शेयर बाजार ऐसे जुआघर बन गये हैं जहां पिद्दी से पिद्दी बचत धारी को भी जबरन जुआ खेलाया जाता है (आज कल भारत में यह बात चल रही है कि पोस्ट ऑफिस के बचत खातों एवं भविष्य निधि के धन का भी निवेश शेयर बाजार में किया जाये)।

दूसरा ऐसा भी नहीं है कि अतिरिक्त मूल्य के रूप में, श्रमिक की श्रमशक्ति की लूट के बिना ही वित्तीय पूंजी अपना विस्तार करती रह सकती है। शेयर बाजार परिघटना एवं वास्तविक उत्पादन के अंतर सम्बंध पर कैसे भी सोचा जाये तो अंतोक्त के बिना प्रथमोक्त अपना औचित्य खो बैठता है। एक तो इस वजह से कि यदि उत्पादन न हो तो शेयर-बाजार तो क्या समस्त समाज का अस्तित्व ही नहीं कायम रहेगा। दो, यह कि यदि वास्तविक उत्पादन में पूंजी की किल्लत होने लगे और उत्पादों की मांग बनी हुई हो तो शेयर बाजार की दोयम मंडियों (**Secondary Markets)** से पूंजी प्राथमिक मंडियों (**Primary Markets**) में प्रवाहित होने लगेगी। तीन, यह कि शेयर बाजारों की दोयम मंडियों में जो भी पूंजी आ रही है, चाहे वह प्रतिभूतियों की खरीद में लगे या डेरिवेटिज की खरीद में, वह दरअसल मुद्रा-पूंजी है जो उत्पादन प्रक्रिया से ही संचित हुई है। हां, शेयर बाजार में पहुंचने के उपरांत उसका का बाजार पूंजीकरण (**Market capitalization**) हो जाता है, या दूसरे शब्दों में वह अपने वास्तविक आकार से कहीं बड़ी आभासी पूंजी (**fictionous capital**) हो जाती है और शेयर बाजार में उछाल के साथ चूंकि इस आभासी पूंजी का आकार बढ़ता जाता है अतः एसा लगता है कि वह स्वप्रसार के गुणों से युक्त हो गयी है और वह श्रमिक के अतिरिक्त मूल्य की लूट पर निर्भर नहीं है। इस रहस्मय मामले को मार्क्स ने यूं साफ किया है:

> *" आभासी पूंजी का निर्माण पूंजीकरण कहलाता है। हर नियतकालिक आय को उसे औसत ब्याज दर के आधार पर ऐसी आय के रूप में परिकलित करके पूंजीकृत किया जाता है, जो इस ब्याज दर पर उधार दी गयी किसी पूंजी से प्राप्त होती। उदाहरण के लिए, अगर वार्षिक आय 100 पाउंड और ब्याज 5% हो, तो 100 पाउंड 2000 पाउंड पर वार्षिक ब्याज के द्योतक होंगे, और 2,000 पाउंड को 100 पाउंड वार्षिक पर वैध स्वत्वाधिकार का पूंजी मूल्य माना जायेगा। इस स्वत्वाधिकार को खरीदने वाले के लिए 100 पाउंड की वार्षिक आय वस्तुतः 5% की दर से निवेशित उसकी पूंजी पर ब्याज को व्यक्त करती है। इस प्रकार पूंजी की वास्तविक प्रसार प्रक्रिया के साथ सारा संबंध पूर्णतः लुप्त हो जाता है और उससे पूंजी के बारे में यह अवधारणा पुष्ट होती है कि वह स्वतः स्व-प्रसार के गुणों से युक्त होती है।" (मार्क्स, पूंजी, खण्ड-3, प्रगति प्रकाशन, मास्को, 1988 , पृष्ठ 410-411)*

शेयर बाजार में लगी पूंजी कितनी आभासी होती है और बढ़ता हुआ बाजार-पूंजीकरण कितना अवास्तविक होता है इसका एहसास तब तुरन्त ही हो जाता है जब शेयर-बाजार की परिधि के बाहर की किसी घटना से उसका उछाल समाप्त हो जाय और वह तेज गिरावट की शिकार हो जाये। तब अचानक बाजार-पूंजीकरण सिकुड़ने लगता है और उसका सूचकांक लुढ़कने लगता है, और चारों ओर हाहाकार मचने लगता है कि पूंजी नष्ट हो रही है, अरबों-खरबों की दौलत वाष्पित हो रही है आदि-आदि। दरअसल ऐसी स्थिति में हो इतना ही रहा होता है कि वह कम आभासी हो रही होती है।

यह दीग़र बात है कि शेयर बाजारों में ऐसी तीखी गिरावटों के समाज पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभाव बहुत वास्तविक होते हैं। वैसे यदि 22 मई 2006 जैसी बड़ी गिरावटों के उदाहरण को छोड़ भी दिया जाये और हम रोजमर्रा के आम वित्तीय कारोबार पर ही अपना ध्यान केन्द्रित रखें तब भी हमें यह बात समझ में आ सकती है कि शेयर बाजार कितने आभासी होते हैं। सामान्यतः यदि शेयर बाजार की चौहद्दी के बाहर किसी देश का केन्द्रीय बैंक यदि बैंकों द्वारा पैसा उधार लेने की दरों में कोई बड़ी बढ़ोत्तरी कर दे या सरकार शेयर बाजार के सट्टेबाजों पर कोई नई पाबंदी या कर लाद दे तो शेयर बाजार में लगी पूंजी का आकार सिकुड़ने लगता है। यहां महत्वपूर्ण बात यह है कि जब भी सिकुड़न होती है तो बाजार-पूंजीकरण (**Market Capitalization**) में सिकुड़न उस धन की तुलना में कई गुना ज्यादा होती है जो कि इस दौरान शेयर बाजार से बाहर खींचा गया है। यह प्रक्रिया पुनः हमें शेयर बाजार की पूंजी के आभासी चरित्र का एहसास कराती है और हमें विवश करती है कि हम प्रतीति (वित्त पूंजी का वास्तविक उत्पादन से स्वतंत्र स्वतः स्व-प्रसार) और वास्तविकता (पूंजी के आकार में वृद्धि का स्रोत श्रमिक के अतिरिक्त मूल्य का संचय है) में भेद करें। आगे बढ़ने से पहले यहां एक बात को और संज्ञान में ले लें। वह बात यह है कि जब से शेयर बाजारों में डेरिवेटिव्ज कारोबार शुरू हुआ है, और जैसे-जैसे यह गुण (नये-नये डेरिवेटिव्ज) व मात्रा, दोनों में बढ़ रहा है वैसे-वैसे शेयर बाजारों का आभासी चरित्र आम तौर पर और आभासी होता जा रहा है और समाज में यह भ्रम बढ़ता जाता है कि शेयर बाजार में लगी पूंजी स्वतः स्व-प्रसार के गुणों से युक्त है। लोगों के संकीर्ण दैनंदिन निजी अनुभवों से यह धारणा और पुष्ट होती है- वे कहते हैं " देखा! मैने ONGC का शेयर 600 रूपये में खरीदा था, आज वह 1,235 रुपये का हो गया है।" स्थिति दरअसल है भी यह कि कोई अंशधारी अपने थोड़े से शेयर 1,235 रुपये में बेच कर प्रति शेयर 635 रूपये कमा सकता है। मगर जैसे ही सभी ONGC शेयर धारक, शेयर बाजार या बाहर की किसी घटना के प्रभाव में, ONGC के सभी शेयर बेचना चाहेंगे तब ये शेयर 1,235 तो क्या 600 रूपये में भी नहीं बिकेंगे, बल्कि ये अपनी प्राथमिक सार्वजनिक पेशकश (**Initial Public Offer- I P O**) से कहीं नीचे पहुंच जायेंगे। इस दौरान ONGC के तेल के कुओं, ड्रिलिंग सामग्री, रिगों की संख्या एवं अन्य परिसंपत्तियां जस की तस होंगी, और उनमें संचित मृत श्रम भी उतना ही बना रहेगा। अर्थात् संकीर्ण दैनंदिन अनुभव जिस भ्रम को स्थापित करते हैं, वह ऐसे मौकों पर टूट जाता है।

भारत के शेयर बाजार

साल भर में यदि प्रतिभूतियों एवं डेरिवेटिव्ज की खरीद-बिक्रियों की संख्या को जोड़ा जाय और सौदों के आकार के जोड़ (कारोबार) को संज्ञान में न लिया जाय तो भारत की दो प्रमुख स्टॉक-एक्सचेजें (नेशनल स्टॉक एक्सचेंज-NSE एवं बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज-BSE) दुनिया में चोटी की स्टॉक-एक्सचेंजों में गिनी जाती हैं। विगत वर्षों में NSE तीसरे पायदान पर BSE पांचवे पायदान पर पहुंच चुकी है और इस मायने में इन्होंने जापान एवं यूरोप की एक्सचेंजों को पीछे छोड़ दिया है।

तालिका – 2

सौदों की संख्या के अनुरूप हैसियत

	2002	2003	2004	2005
NAS DAQ	1	1	1	2
NYSE	2	2	2	1
NSE	3	3	3	3
Shanghai	5	4	4	6
BSE	7	5	5	5
Korea	4	7	6	4
Taiwan	6	6	7	8
Shenzhen	8	8	8	7
Deutsche Borse	9	9	9	9
London / Euronet	12	11	10	10

स्रोत : Economic Survey 2005 - 2006, GOI,पृष्ठ – 66

यह अपने आप में बड़ी अजीब सी बात है कि यद्यपि भारत की अर्थव्यवस्था का आकार जापान व यूरोप की अर्थव्यवस्थाओं के सामने कहीं नहीं ठहरता और भारत में आने वाली FDI एवं FPI का आकार भी काफी छोटा है, फिर भी भारत की दो प्रमुख स्टॉक-एक्सचेंजों में सौदे इतने ज्यादा होते हैं। ऐसा होने के निश्चित कारण हैं और भारत के शेयर-बाजार में विगत वर्षों में उछाल और फिर मई 2006 की तेज गिरावट या भारतीय शेयर बाजारों की रोजमर्रा की उठा-पटक (Volatility) को समझने में उक्त कारक काफी मददगार हैं। यहां हम इस मामले की छान-बीन करेंगे। मगर उससे पहले यह जरूरी है कि भारत के शेयर बाजारों की संरचना का थोड़ा जायजा ले लिया जाये और उसके भी पहले यह उचित होगा कि उस संदर्भ की भी थोड़ी चर्चा कर ली जाये, जिसमें भारत के शेयर बाजारों का विकास हो रहा है।

आज भारत की गिनती दुनिया के उभरते हुए बाजारों (Emerging markets) में की जाती है, बल्कि यह इनमें भी चार चोटी के बाजारों, BRIC देशों (ब्राजील, रूस, इंडिया, चीन) में गिना जाता है। BRIC देशों के प्रवर्ग में वे बाजार समेटे गये हैं जिन की सालाना विकास दर 7.5% के ऊपर है। इस मुद्दे पर पर्याप्त बहस है कि भारत की मंथर पड़ी अर्थव्यवस्था में यह तेज विकास की प्रवृति नई उदारीकरण-वैश्वीकरण की नीतियों का परिणाम है या फिर यह इससे कहीं ज्यादा बुनियादी कारकों के सक्रिय होने का नतीजा है (हमारा मत रहा है कि 'हिन्दू विकास दर' से पिंड छुड़ाने और भारतीय अर्थव्यवस्था के उच्च गीयर में दाखिल होने की प्रेरक शक्तियां उदारीकरण-वैश्वीकरण की नीतियों से कहीं बुनियादी चीजें हैं, मसलन पुराने अर्द्ध-सामंती उत्पादन सम्बंधों का निर्णायक तौर पर पूंजीवादी उत्पादन सम्बंधों में तब्दील हो जाना, उत्पादक शक्तियों विशेषकर आधारभूत ढांचे का एक हद तक विकास आदि)। मगर इस मुद्दे पर कोई बहस नहीं है कि पिछले डेढ़ दशक से भारत में ऐसी आर्थिक नीतियां लागू हो रही हैं जो कि अर्थव्यवस्था में सरकार के हस्तक्षेप को घटाने एवं शेष दुनिया से भारत के लेन-देन को बढ़ाने की ओर उन्मुख हैं। विगत वर्षों में भारत के शेयर बाजारों के कारोबार में जो विविधता आयी है, कारोबार ने जो वृहद आकार ग्रहण किया है और समाज में शेयर बाजारों की हैसियत में जो इजाफ़ा हुआ है वह मूलतः इन्हीं नई उदारीकरण-निजीकरण-वैश्वीकरण की नीतियों का परिणाम है। समग्र अर्थव्यवस्था को उच्च गीयर में दाखिल कराने वाले बुनियादी कारक इस शेयर बाजार परिघटना के न तो फौरी कारक हैं और न मूल कारक। ऐसा नहीं है कि यदि सरकार पुरानी नेहरूवादी नीतियां बदलकर नई एल.पी.जी. नीतियां नहीं लाती तो शेयर बाजारों के आकार में वृद्धि न होती या इसमें कुछ और विविधता न पैदा होती। यह तो पूंजीवाद के विकास के साथ होना ही था। मगर तब यह सब कुछ काफी कम होता; गुणात्मक अर्थों में कम।

यदि कोई तालिका - 3 एवं उस पर आधारित लेखा चित्र-1 को सरसरी निगाह से भी देखे तो साफ दिखाई पड़ता है कि 1991 के पश्चात् शेयर बाजार की प्रकृति में काफी अंतर आया है और अब मुंम्बई शेयर बाजार में बाजार-पूंजीकरण की गति एवं समग्र अर्थव्यवस्था में सकल घरेलू पूंजी निर्माण (चाहे उसे स्थिर कीमतों पर आंका जाय या चाहे उसे चालू कीमतों पर आंका जाय) के बीच पहले जैसा सामंजस्य कतई नहीं बचा है। अर्थात देश में उत्पादक शक्तियों का विकास जिस रफ्तार से हो रहा है, शेयर बाजार के उछाल या गिरावट कम से कम उसकी अभिव्यक्ति नहीं हैं।

1991 के बाद से सरकार के अनेक निर्णय एवं नीतिगत परिवर्तन ऐसे रहे हैं जिन्होंने शेयर बाजार को बड़ा, विविध एवं महत्वपूर्ण बनाने में प्रत्यक्ष भूमिका निभाई है। इन निर्णयों/नीतिगत परिवर्तनों में अहम हैं-लाइसेंस राज की क्रमशः समाप्ति, देश की भीतर व्यापार पर तमाम किस्म की बंदिशों का हटाया जाना, आयात-निर्यात पर करों एवं मात्रा, दोनों प्रकार की बंदिशों को चरणबद्ध ढंग से कम करना, एम.आर.टी.पी.एक्ट को दंतहीन बनाना, पूरे कर वसूली ढांचे का सरलीकरण, आयकर विभाग द्वारा ऐसे कदम उठाना जिनसे जमाखोरों का कालाधन सफेद हो सके, सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियों एवं बैंकों (व अन्य गैर बैंकिग वित्तीय संस्थाओं) को शेयर बाजार में उतरने की छूट देना, सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों का आंशिक या पूर्ण निजीकरण इत्यादि इत्यादि। ऐसे सभी फैसलों/नीतिगत परिवर्तनों ने शेयर बाजार के विकास में प्रत्यक्ष भूमिका निभाई है। मगर तब भी मुद्रा (रुपया) की परिवर्तनीयता वह फैसला माना जाना चाहिए जिसने शेयर बाजारों की विविधता को बढ़ाने, उनमें उठा-पटक (Volatility) को बढ़ाने, उनके आकार को फुलाने में सबसे महत्वपूर्ण उत्प्रेरक की भूमिका निभाई है। 1994 में भारत सरकार ने चालू खाते (current account)में पूर्ण परिवर्तनीयता लागू की। इससे पहले, सितम्बर 1992 में, भारतीय वित्त बाजारों को विदेशी संस्थागत निवेशकों (FII's) के लिये पूंजीगत खाते में आंशिक परिवर्तनीयता के साथ तथा कुछ अन्य बंदिशों के साथ खोला गया था। तब से लेकर अब तक ये बंदिशें क्रमशः ढीली की गयी हैं। आज विदेशी संस्थागत निवेशकों (FII's) एवं अप्रवासी भारतीयों (NRI's) के लिए पूंजीगत खाते (capital account) में पूर्ण परिवर्तनीयता है। लेकिन अभी भी स्थानीय प्रवासियों एवं कंपनियों को यह छूट नहीं है कि वे यहां से पैसा ले जाकर विदेशों में निवेश करें या विदेशी मुद्रा, प्रतिभूतियों, डेरिवेटिव्ज एवं सोना-चांदी मंडियों में उतरकर

तालिका - 3

YEAR	Gross Capital Formation (Crore Rs.)		Market Capitalization At BSE(Crore Rs.)
	Current Prices	Constent Prices (1993 - 94)	
1983 - 84	41,104	103,784	10,219
1984 - 85	49,355	112,567	20,378
1985 - 86	60,401	123,113	21,636
1986 - 87	65,306	123,552	25,937
1987- 88	79,733	142,152	45,519
1988 - 89	100,217	160,762	54,560
1989 - 90	119,258	172,047	65,206
1990 - 91	149,536	195,650	90,836
1991 - 92	147,258	171,553	323,366
1992 - 93	176,722	187,478	188,146
1993 - 94	198,412	198,412	368,071
1994 - 95	263,356	243,882	435,481
1995 - 96	319,527	271,015	526,476
1996 - 97	334,999	268,435	463,915
1997 - 98	374,480	289,058	560,325
1998 - 99	393,021	290,971	545,361
1999 - 2000	490,669	351,624	912,842
2000 - 01	498,179	346,682	571,553
2001 - 02	513,543	336,486	612,224
2002 - 03	610288 (P)	395163 (P)	572,198
2003 - 04	726868 (QE)	449539 (QE)	1,201,202
2004 - 05	–	–	1698428 (P)

स्रोत : SEBI, Hand Book of Statistics on the Indian Securities Market 2005

लेखा चित्र- 1

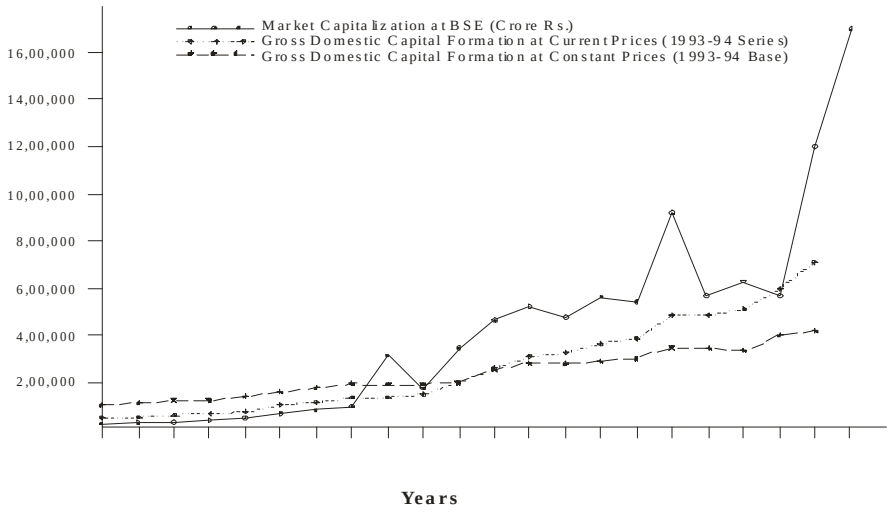

कारोबार करें। अभी हाल में इन्हें इतनी छूट जरूर मिली है कि ये अंतर्राष्ट्रीय जमा रसीद (GDR) एवं अन्य उधार-उपकरणों को जारी करके, विदेशों में पूंजी इकट्ठी कर सकें। भारतीय पूंजीपति वर्ग अब घरेलू कंपनियों एवं प्रवासी भारतीयों के लिए भी मुद्रा की पूर्ण परिवर्तनीयता की मांग, यानी पूंजीगत खाते में भी पूर्ण परिवर्तनीयता की मांग कर रहा है। चर्चाएं हैं कि सरकार जल्द ही इसकी भी छूट दे देगी। ऐसा हो जाने पर शेयर बाजारों की चंचलता, विविधता एवं

आकार में और वृद्धि होनी चाहिये। हालांकि अभी भारतीय स्टॉक एक्सचेंजों में 'विदेशी मुद्रा डेरिवेटिव्ज' के व्यापार की छूट नहीं है तब भी मुद्रा परिवर्तनीयता की वर्तमान स्थिति ने यह तो सम्भव बनाया ही है कि FII एवं NRI भारत के वित्तीय बाजारों में घुस कर मुनाफा कमा सकें।

तालिका – 4

भारत में पंजीकृत FII की संख्या			
वर्ष	संख्या	वर्ष	संख्या
मार्च 1993	18	मार्च 2001	527
मार्च 1995	308	दिसम्बर 2004	637
मार्च 1999	450	दिसम्बर 2005	823

स्रोत : http://www.sebi.gov.in

लेखा चित्र- 2

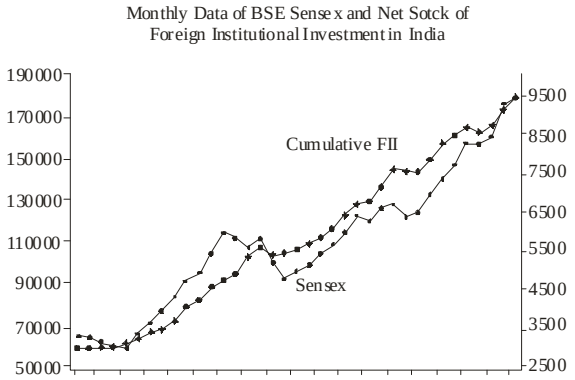

Source: Web sites of Bombay Stock Exchange (http://www.bseindia.com/)
and Securities and Exchange Board of India (http://www.sebi.gov.in/)

FII के लिए यह साफ है कि भारत में औसत कीमत-आमदनी अनुपात (Price - earnings ratio) अन्य BRIC देशों की तुलना में ऊंचा है कि भारत में यह 19 है, जबकि ब्राजील, रूस व चीन में यह 11 से 13 के बीच है। यानी कि भारत में प्रतिभूतियों में दीर्घकालिक निवेश करके यदि आप मुनाफा कमाना चाहें तो एक डालर कमाने के लिए आपको साल भर 19 डालर निवेश करके रखने पड़ेंगे, जबकि अन्य BRIC देशों में वही एक डालर आप साल भर के लिये 11 - 13 डालर निवेश करके कमा सकते हैं। इसके बावजूद यदि FII एवं NRI भारतीय प्रतिभूतियों के बाजार में दिलचस्पी ले रहे हैं तो उसका मूल कारण अल्पकालिक निवेश से होने वाले लाभ हैं, जो कि प्रतिभूतियों के दाम तेजी से ऊपर उठने से और रोजमर्रा की उठा-पटक (Volatility) की बदौलत अस्तित्व में आते हैं। FII व NRI की भारतीय शेयर बाजारों में दिलचस्पी ने घरेलू कंपनियों एवं संस्थागत निवेशकों को उत्प्रेरित किया है कि वे शेयर बाजार में अपनी भूमिका बढ़ायें क्योंकि होशियार अल्पकालिक निवेशों पर मुनाफे काफी थे। बड़े खिलाड़ियों के इस समूह की गतिविधियों से शेयर बाजार में जो उछाल आया उसने बड़ी तादाद में छोटे निवेशकों को प्रेरित किया कि वे शेयर बाजार में अपनी बचत उड़ेलें। पिछले तीन-साढ़े तीन वर्षों में शेयर बाजार के उछाल में FII की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण रही है जिसे मुद्रा परिवर्तनीयता ने सम्भव बनाया है।

एल.पी.जी. नीतियों के इस विशिष्ट संदर्भ ने न केवल भांति-भांति की आर्थिक शक्तियों (FII, NRI, म्यूचुअल फंड, बैंक, गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थायें, सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियों, निजी क्षेत्र के कारपोरेट घरानों, दलालों की फर्मों, जमाखोरों, माफिया आंदोलन के संगठनकर्ताओं, 'हाई नेट-वर्थ इंडिविजुअल्स' इत्यादि) की शेयर बाजार में हिस्सेदारी को सुगम बनाया है एवं प्रोत्साहित किया है। उसने शेयर बाजार की संरचना में भी विविधता पैदा की है और अपनी बारी में

इस संरचनात्मक विकास ने शेयर बाजार के आकार को बढ़ाने में महती भूमिका निभाई है। शेयर बाजार के संरचनागत विकास के सम्बंध में दो चीजें विशेषतौर पर उल्लेखनीय हैं। एक, 'नेशनल स्टॉक एक्सचेंज' की स्थापना और दूसरी, 'डेरिवेटिव्ज' कारोबार की स्थापना।

नवम्बर 1994 में भारत में एक नई स्टॉक एक्सचेंज 'नेशनल स्टॉक एक्सचेंज' की स्थापना की गयी। यह भारतीय पूंजीपति वर्ग की 21 वीं सदी की आवश्यकताओं के अनुरूप एक्सचेंज थी। सर्वप्रथम यह एक 'डी-म्यूचलाइज्ड एक्सचेंज' (de - mutualized exchange) थी। अर्थात देश भर में स्थापित किये गये उसके 400 से अधिक केन्द्रों (जिन्हें संचार उपग्रह से जोड़ा गया है) में बैठे दलालों के पास इसमें व्यापार करने के अधिकार तो थे, मगर उनका इस एक्सचेंज पर किसी भी प्रकार का मालिकाना नहीं था और न ही वे इसके प्रबंधन में शामिल किये गये। इस एक्सचेंज का मालिक बैंकों एवं वित्तीय संस्थाओं का एक समूह है और पेशेवर प्रबंधक इसे संचालित करते हैं, जिन्हें भांति-भांति की पाबन्दियों से एक्सचेंज पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष व्यापार करने से रोका जाता है। पूरा प्रयास किया गया है कि स्टॉक की कीमतों की खोज (Price discovery), एक्सचेंज के कम्प्यूटरों के स्क्रीन पर ही हो। NSE ने खरीद के भुगतान की गारंटी करने के लिए एक अलग से संस्था (National Securities Clearing Corporation) गठित की है जो कि केन्द्रीय प्रति-पार्टी की भूमिका निभाती है, यानी कि तय समय में भुगतान न हो पाने की स्थिति में वह अपने कोष से बेचने वाले को भुगतान करके भुगतान संकट को संक्रामक बनने से रोकती है। सौदों के निपटारे को तेज करते हुए उसने T + 2 व्यवस्था लागू की है। यानी कि सौदा होने के तीन कार्य दिवसों के भीतर वह पैसे और कागजों के आदान-प्रदान को सुनिश्चित कराती है। फर्जी कागजात की बिक्री को रोकने के लिए उसके कंप्यूटरों में मालिकाने का रिकार्ड लगातार नवीनीकृत होता रहता है। N S E के आधुनिक स्वरूप ने इसे देश के शेयर बाजारों के केन्द्र के रूप में स्थापित कर दिया और परिणाम स्वरूप BSE भी अपना आधुनिकीकरण करने के लिए बाध्य हुई। आज देश में डेरिवेटिव्ज का 99% से ज्यादा व्यापार N S E पर होता है जो कि देश में प्रतिभूतियों के कुल व्यापार के दो गुने के करीब है। अतः भारत में एक अत्याधुनिक स्टॉक एक्सचेंज की स्थापना करके भारत के पूंजीपतियों ने शेयर बाजार के वृहद फैलाव के रास्ते खोले।

आज भारत में कुल 22 स्टॉक एक्सचेंज हैं जिनमें से दो (BSE व NSE) पर डेरिवेटिव्ज व्यापार की सुविधा व अनुमति है। डेरिवेटिव्ज भारत के लिए बिलकुल नई चीजें हैं। 20 वीं सदी में भारत के वित्तीय उपकरणों में डेरिवेटिव्ज का अस्तित्व नहीं था। 90 के दशक के मध्य तक इनका तथाकथित आरम्भिक एवं बेहद स्थूल रूप "बदला" यहां चला करता था। स्टॉक मार्केट में अनेक भुगतान संकटों के सार संकलन के बतौर पूंजीपति वर्ग ने "बदला" के प्रचलन पर रोक लगा दी। इसके उपरांत जून 2000 में पहला डेरिवेटिव "इंडेक्स फ्यूचर्स" स्थापित किया गया। फिर जून 2001 में "इंडेक्स ऑप्सन"। जुलाई 2001 में "स्टॉक ऑप्सन" और अंततः नवम्बर 2001 में "स्टॉक फ्यूचर्स"। चार-पांच वर्षों की अल्पअवधि में डेरिवेटिव्ज भारत के शेयर बाजारों के कारोबार का सबसे महत्वपूर्ण घटक बन चुके हैं। इनमें कारोबार, प्रतिभूतियों में व्यापार के दो गुने के करीब हो चुका है। मात्र "स्टॉक फ्यूचर्स" में होने वाला व्यापार देश की समस्त स्टॉक एक्सचेंजों में होने वाले प्रतिभूति व्यापार से बड़ा हो चुका है। इन तथ्यों से अंदाज लगता है कि ऐसे नये वित्तीय उपकरणों (Financial instruments) का सृजन करके भारत के पूंजीपति वर्ग ने शेयर बाजार के विकास को कैसे प्रोत्साहित किया है। लोकसभा में 'रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया (संशोधन) बिल 2005' के पारित हो जाने से और भी नये व चंचल डेरिवेटिव्ज की स्थापना के द्वार अब खोले जा रहे हैं। जिन नये डेरिवेटिव्ज की बात चल रही है उनमें ऐसे डेरिवेटिव्ज हैं जो मुद्रास्फीति को अपना आधार मानेंगे या फिर ऐसे जो किसी संस्थान/ कंपनी की उधार-साख (credit ratings) पर आधारित होंगे, या फिर विदेशी मुद्राओं व प्रतिभूतियों के दामों को आधार मानने वाले। इन नये भांति-भांति के डेरिवेटिव्ज की स्थापना का रास्ता खोलने के साथ-साथ यह नया संशोधन भारतीय रिजर्व बैंक को इस बात के लिए अधिकृत करता है कि वह बैंकों की सी.आर.आर. (C R R) सीमाएं निर्धारित करे और स्वयं बाजार में डेरिवेटिव्ज खरीदे-बेचे। भारतीय रिजर्व बैंक की इस नव प्राप्त स्वायत्तता के अमल में आते ही शेयर बाजार को और बढ़ावा मिलेगा।

भारतीय शेयर बाजारों में स्टॉक एक्सचेंजों की बनावट तथा इन में खरीदे-बेचे जाने वाले वित्तीय-उपकरणों पर गौर करने के साथ-साथ इन बाजारों की संरचना को एक और कोण से भी परखना चाहिए। वह है इनमें कारोबार करने वाली पूंजी का संघटन।

तालिका 5 से स्पष्ट कि वर्ष 2005 में भारत के प्रतिभूति बाजार के सकल कारोबार में करीब 83 % हिस्सा गैर-संस्थागत निवेशकों का है। ऐसे ही डेरिवेटिव्ज बाजार में 93% हिस्सा गैर-संस्थागत निवेशकों का है। उल्टे प्रतिभूति बाजार के सकल कारोबार में संस्थागत निवेशकों का हिस्सा करीब 17% है जिसमें FII सकल कारोबार का 12% हिस्सा बनते हैं। डेरिवेटिव्ज बाजार में संस्थागत निवेशक करीब 7 % है और FII करीब 6% । सभी गैर-संस्थागत निवेशकों को छोटे फुटकर कारोबारी मानने की गलती हम नहीं कर सकते हैं। इनमें विभिन्न कारपोरेट घरानों के प्रॅमोटर भी शामिल हैं

जो या तो अपनी कंपनियों में अपना हिस्सा घटाने-बढ़ाने के चक्कर में खरीद-बेच करते रहते हैं या फिर सीधे शेयर-बाजार से मुनाफा कमाने के लिये इसकी डेरिवेटिव्ज व प्रतिभूतियों का मंडियों में कारोबार करते हैं। ऐसे ही अन्य 'हाई-नेट-वर्थ-इंडिविजुअल्स' मसलन सिनेमा जगत की हस्तियां, राजनीतिज्ञ, काला-बाजारिये, माफिया सरगना, किस्म-किस्म के दलाल, बड़े व्यापारी, गैर-कारपोरेट उद्योगपति आदि-आदि भी इसी प्रवर्ग में शामिल हैं। ऐसे कोई आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं जिनके आधार पर छोटे फुटकर कारोबारियों एवं इन 'हाई-नेट-वर्थ-इंडिविजुअल्स' की शेयर-बाजार में लगने वाली पूंजी को अलग-अलग परखा जा सके। मगर तब भी यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि भारत के शेयर-बाजारों में छोटे-फुटकर निवेशकों की खासी दिलचस्पी है। यह अनुमान हम शेयर बाजार में होने वाले सौदों के औसत आकार से लगाते हैं। इसके आंकड़ें SEBI उपलब्ध करवाती है और यह काफी छोटा है।

तालिका – 5

सकल कारोबार (Gross turn over) (करोड़ रुपये में)					
वर्ष		2002	2003	2004	2005
प्रतिभूति बाजार					
	NSE + BSE सकल कारोबार	1,914,273	2,634,085	3,416,824	4,178,295
	सभी संस्थाएं	113,374	204,745	370,609	714,638
	FII	54,016	158,366	332,379	502,590
डेरिवेटिव बाजार					
	NSE + BSE सकल कारोबार	692,742	2,880,489	5,211,820	7,853,687
	सभी संस्थाएं	0	51,397	176,940	521,762
	FII	0	0	170,338	476,925
प्रतिभूति बाजार + डेरिवेटिव बाजार					
	NSE + BSE सकल कारोबार	2,607,015	5,514,574	8,628,645	12,031,981
	सभी संस्थाएं	113,374	256,142	547,449	1,236,400
	FII	54,016	158,366	502,717	979,515

स्रोत : Economic Survey 2005 - 2006, GOI,पृष्ठ- 73

तालिका – 6

सौदों का औसत आकार (रुपये)				
	वर्ष			
	2002	2003	2004	2005
NSE प्रतिभूतियां	26,703	26,993	27,716	24,293
BSE प्रतिभूतियां	22,485	22,782	25,610	13,689
NSE डेरिवेटिव्ज	300,334	425,077	488,790	501,946

स्रोत: http://www.sebi.gov.in

सौदों का छोटा आकार यद्यपि इस बात का द्योतक है कि भारत के शेयर बाजारों में छोटे-फुटकर निवेशक अच्छी खासी मात्रा में हिस्सेदारी करते हैं, मगर इससे यह निष्कर्ष निकालना कि शेयर बाजारों पर उनका प्रभाव है कतई गलत होगा। शेयर बाजार के कुल कारोबार में अल्प हिस्सा होने के बावजूद संस्थागत निवेशक एवं 'हाई-नेट-वर्थ-इंडिविजुअल्स' ही वे शक्तियां बनती हैं जो कि शेयर बाजार की गतियों व उप गतियों पर निर्णायक प्रभाव डाल सकें। ये ही शेयर-बाजार के इंजन है। छोटे-फुटकर निवेशक तो इसके डिब्बे भर हैं। बड़े निवेशक इंजन इसलिए हैं क्योंकि ये बड़े आकार के सौदे करके बाजार की मनोदशा (market sentiment) को प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं। यह अकारण नहीं है कि इनमें से कइयों को समय-समय पर शेयर बाजार के सांड़ व भालू (Bulls and Bears) के विशेषणों से नवाजा जाता है। शेयर बाजारों के रोजमर्रा के अनुभव इस बात को पुष्ट करते हैं कि ये तमाम किस्म के कार्टेल या गुट बनाकर बाजार मनोदशा को प्रभावित करते रहते हैं। शेयर बाजार के विशाल समुद्र की ये इतनी बड़ी शार्कें हैं कि सम्मिलित तौर पर ये शेयर बाजार के नियम-कायदों को भी अपनी आवश्यकता अनुरूप ढलवा लेते हैं। इनके

प्रभाव का एक उदाहरण SEBI का 14 नवम्बर, 2005 का निर्णय है। 14 नवम्बर, 2005 के पहले भारत के शेयर बाजार इस सिद्धांत पर नियोजित होते थे कि खरीदार चाहे बड़े हों या छोटे मगर सारी खरीद एक ही साझे मंच से होगी ताकि कीमतों की खोज (Price discovery) साझी व पारदर्शी हो। इसके लिये जरूरी था कि हर खरीद का ऑर्डर स्क्रीन की ऑर्डर-बुक में दर्ज हो। इस इंतजाम का परिणाम यह होता था कि किसी एक समय में किसी एक वित्तीय उपकरण की खरीद लगभग एक ही दाम पर होती थी चाहे खरीदार बड़ा हो या छोटा। 14 नवम्बर 2005 के निर्णय के परिणाम स्वरूप 5 लाख शेयर या 5 करोड़ रुपये से बड़े सौदे अब अलग खिड़की से किये जाने लगे हैंऔर इनके बारे में जानकारी एक्सचेंज, कारोबार के घंटे समाप्त हो जाने के बाद देती है। इस निर्णय की बदौलत बड़े खिलाड़ी इस स्थिति में आ गये हैं कि वे स्क्रीन पर आने वाले भाव से ऊपर-नीचे खरीद-बिक्री कर उन्हीं शेयरों को उसी दिन फुटकर खरीदारों को आगे बेच कर पैसा बनायें। SEBI का 14 नवम्बर, 2005 का निर्णय शेयर बाजार की इन शार्कों की ताकत की अभिव्यक्ति है।

भारतीय शेयर बाजारों की एक और संरचनागत विशेषता है जिस पर गौर जरूरी है। भारत के शेयर बाजार दुनिया के उन अपवाद बाजारों में हैं जो कि दैनिक व्यापार (Day-trading) की अनुमति देते हैं। न्यूयॉर्क स्टॉक एक्सचेंज जैसी विशाल स्टॉक एक्सचेंज भी 'डे-ट्रेडिंग' की अनुमति नहीं देती है। वह भी इस बात की मांग करती है कि किसी वित्तीय-उपकरण की बिक्री तब ही की जा सकती है जब वह उससे पहले विक्रेता के नाम पर पंजीकृत किया जा चुका हो और कोई वित्तीय उपकरण तब ही खरीदा जा सकता है जब खरीददार (अपने दलाल के जरिये) उसकी खरीद का पैसा स्टॉक एक्सचेंज में जमा करवाये। इस नियम के कारण होता यह है कि कोई वित्तीय उपकरण किसी एक सौदा निपटारा अवधि (Settlemcnt period), जो कि भारत की स्टॉक एक्सचेंजों में T+2 है, में केवल एक ही बार खरीदा-बेचा जा सकता है। भारत में 'डे-ट्रेडिंग' की अनुमति है अतः वित्तीय उपकरण दिन भर में कई बार खरीदे-बेचे जाते हैं। इस 'डे- ट्रेडिंग' की अनुपूरक व्यवस्था यह है कि भारत के स्टॉक एक्सचेंज अपने पंजीकृत दलालों को यह अनुमति देते हैं कि वे किसी वित्तीय उपकरण की खरीद और उसके पश्चात बिक्री में वित्तीय उपकरण के दामों के अंतर का ही भुगतान करें। यानी कि भारत में 'मार्जिन ट्रेडिंग' (Margin Trading) का अधिकार स्टॉक एक्सचेंजों के पंजीकृत दलालों के पास है। ऐसी व्यवस्था के चलते होता यह है कि मान लीजिये कि किसी खरीददार ने 'मारूति उद्योग' का कोई शेयर सुबह 11.00 बजे 805 रूपये का खरीदा। अब उसका दलाल उसके नाम पर 'मारूति उद्योग' के एक शेयर के पंजीकरण की कार्यवाही कारोबार बंद होने के समय (सामान्यतः दोपहर 3.30 बजे) के बाद ही करेगा। इस बीच यह शेयर उसके पास रहता है और इसे बेचकर वह दिन भर में पर्याप्त सट्टेबाजी कर लेता है और एक्सचेंज बंद होने के पहले वह अपने आसामी की जरूरत पूरा करने के लिए उसे पुनः खरीद लेता है। इस बीच उसे 'डे ट्रेडिंग' सुविधा एवं 'मार्जिन ट्रेडिंग' सुविधा के कारण पर्याप्त सट्टेबाजी करने के अवसर मिल चुके होते हैं। इन कारणों से भारत के बाजारों में सट्टेबाजी काफी बड़े पैमाने पर होती है और यह कारण है कि इनमें निवेशित पूंजी के अनुपात में यहां सौदों की गिनती बहुत ज्यादा है और इस मामले में ये दुनिया की चोटी की एक्सचेंजों में गिनी जाती हैं (देखें तालिका-2)।

भारत के प्रमुख शेयर बाजारों (NSE व BSE दोनों) में रोजमर्रा की उठा-पटक (Volatility) के अत्यधिक उच्चस्तर की जड़ में, उक्त इंतजाम (डे ट्रेडिंग व मार्जिन ट्रेडिंग) एक बड़ा कारक है। सुस्पष्ट है कि उक्त बंदोबस्त, स्टॉक एक्सचेन्जों के अस्तित्व की अनिवार्य शर्त नहीं है। मगर भारत के शेयर बाजारों की यह संरचनागत विशिष्टता है और चूंकि दलाल एवं सरकार, दोनों, उससे लाभान्वित हो रहे हैं इसलिए यह कम से कम तब तक नहीं बन्द होगी जब तक कोई बड़ा आर्थिक संकट उसे बंद करने के लिए सरकार को विवश न कर दे। सरकार को हर अल्पकालिक सौदे पर सौदे के दाम का 0.015% कर के बतौर मिलता है (Short term capital gains tax) ।

तालिका -7

देश	रोजमर्रा की उठापटक	देश	रोजमर्रा की उठापटक
सं.रा.अमेरिका	0.7	ब्राजील	1.8
ब्रिटेन	0.7	मेक्सिको	0.9
हांगकांग	1	जापान	1
सिंगापुर	0.8	सेन्सेक्स	1.6
मलेशिया	0.7	निफ्टी	1.8

स्रोत: SEBI Hand book of statistics on the Indian Securities Market 2005

अब हम विगत तीन-चार वर्षों में शेयर बाजारों में जबर्दस्त उछाल और उसके उपरांत मई 2006 के उत्तरार्द्ध में तीखी गिरावट के खास मामले को लें। गुलाबी रंग के अखबारों एवं अर्थव्यवस्था को समर्पित अनेक पत्रिकाओं में बुर्जुआ जगत के विभिन्न विशेषज्ञों एवं विद्वानों ने उछाल एवं गिरावट दोनों घटनाओं के अनेक विश्लेषण किये हैं। इनमें जो संयमित एवं संजीदा विश्लेषण हैं वे इन दोनों ही घटनाओं के तात्कालिक एवं दूरगामी कारकों को चिह्नित करते हैं।

उछाल के दीर्घकालिक कारक पर इनमें यह आम सहमति रही है कि समग्र अर्थव्यवस्था की बढ़िया स्थिति जो लगातार 1991 से बनी हुई है और उत्तरोत्तर और भी अच्छी होती जा रही है, ही उछाल का मूल कारक है। उछाल के अल्पकालिक कारकों में दो कारक ज्यादा गिनाये जाते रहे हैं। एक यह कि सन 2003 -04 के आम बजट को पेश करते समय सरकार ने शेयर बाजार में सौदों पर दीर्घकालिक पूंजी वृद्धि कर (Long term capital gains tax) को समाप्त करने का जो वादा किया था, सरकार उस पर कायम रही है चाहे इस बीच उस पुरानी भाजपा सरकार की जगह सी.पी. आई/सी.पी.एम समर्थित नयी सरकार ही क्यों न आ गयी हो। दूसरा यह कि रुपया डॉलर या अन्य अंतर्राष्ट्रीय मुद्राओं के मुकाबले चढ़ा है। एक मजबूत व चढ़ता हुआ रुपया यद्यपि भारतीय निर्यातकों के लिए बुरी खबर है मगर वह FII के लिए अच्छी खबर है क्योंकि कुछ समय तक भारतीय बाजारों में निवेश करने के उपरांत जब वे अपनी पूंजी वापस खींचती हैं और उसे डालर में रूपांतरित करती हैं तो उन्हें निवेश अवधि के दौरान रुपये की चढ़त के कारण ही ज्यादा डॉलर मिल जाते हैं। इस आकर्षण के कारण विगत वर्षों में FII ने भारतीय शेयर बाजारों में दिलचस्पी दिखाई है और इसने उछाल में बड़ा योगदान किया है।

गिरावट तीखी थी, इसमें कोई शक नहीं। इतनी तीखी कि सोमवार 22 मई 2006 को दो घंटे के कारोबार के पश्चात मुम्बई व नेशनल, दोनों स्टाक एक्सचेजों को अल्पकाल के लिए बंद कर देना पड़ा क्योंकि इनके संवेदी सूचकांक उस वक्त तक 10% से ज्यादा लुढ़क गये। उस दिन दोबारा कारोबार शुरू होने पर स्थिति थोड़ी बेहतर हुई परन्तु गिरावट बाद के दिनों में भी जारी रही और जून 2006 के पूर्वार्द्ध में हालत यह थी कि सेन्सेक्स 10,000 के नीचे पहुंच चुका था और निफ्टी 3,000 के नीचे (11 मई 2006 के दिन ये क्रमशः 12,671 एवं 3,774 के उच्च स्तर पर बंद हुए थे)।

गिरावट के तात्कालिक कारकों में तीन-चार चीजें प्रमुखता से गिनायी जा रही हैं। एक, यह कि 'लंदन मेटल एक्सचेन्ज' में भांति-भांति के लोहे की कीमतों में 10% के करीब की तेज गिरावट मई 2006 के मध्य में दर्ज की गयी। इसकी अनुगूंज दुनिया भर के शेयर बाजारों में सुनाई दी और 'बाजार की मानसिकता' (Market sentiment) पर इस घटना के नकारात्मक असर पड़े। दो, यह खबर कि अमेरिका में बढ़ती मुद्रा स्फीति को देखते हुए वहां के 'फेडरल रिजर्व बोर्ड' ब्जाय दरें बढ़ा रहा है जिस कारण दुनिया जहान के बाजारों से धन अमेरिका की ओर बहने लगा। तीन, यह खबर कि भारत के वाणिज्य मंत्रालय के अब इरादे हैं कि वह संस्थागत निवेशकों से भारी भरकम कर वसूली करेगा और वह भी पिछले तारीखों से। चार, यह कि सी.पी.एम. के दबाव में सरकार पुनः दीर्घकालिक पूंजी वृद्धि कर लागू करेगी। इन तात्कालिक कारकों के अलावा संजीदा विश्लेषण दीर्घकालिक महत्व की दो बातें कह रहे हैं। पहली, यह कि विगत तीन-चार वर्षों की जबरदस्त उछाल की बदौलत भारतीय शेयर बाजार "अति मूल्य वर्धित" या "जरूरत से ज्यादा गरम" थे। इसलिए "संशोधन" तो एक न एक दिन होना ही था। बस वह मई 2006 के मध्य शुरू हो गया। दूसरी, यह कि ऐसी गिरावट भारत के शेयर बाजारों में कभी भी घट सकती है क्योंकि वे "लीवरेज्ड ट्रेडिंग मार्केट्स" (Leveraged trading markets) हैं। अर्थात इनमें उधार की प्रमुख भूमिका है जो कि 'मार्जिन-ट्रेडिंग' एवं 'फ्यूचर्स-मार्केट' बहुत स्पष्टता से अभिव्यक्त करते हैं। एक से दूसरे हाथों में हस्तांतरित होते उधारों की कड़ियों में कहीं पर भी भुगतान की दिक्कतें पूरे शेयर बाजार में संक्रमण कर सकती हैं। सघन भुगतान रुकावटों की स्थिति में, चाहे वे बाजार के डेरिवेटिव्ज हिस्से में ही क्यों न पैदा हुई हों, पूरा शेयर बाजार ठीक वैसे ही चरमरा सकता है जैसे ऊपर की मंजिलों में आघात के परिणाम स्वरूप वर्ल्ड ट्रेड सेंटर नीचे तक स्वाहा हो गये। अतः ये संजीदा विश्लेषक भारतीय शेयर बाजारों में संरचनागत सुधारों की वकालत करते हैं ताकि इनकी चंचलता को कम किया जा सके और इनमें स्थायित्व लाया जा सके।

भारतीय शेयर बाजारों में सुधार की संभावनाएं

ऊपर गिनाये गये तात्कालिक कारकों में से हम किसी को भी पूर्णतः खारिज नहीं करते हैं। हम इनकी भूमिका को स्वीकारते हैं हालांकि हम इनकी भूमिका को वैसे बढ़ा कर नहीं देखते जैसे कि शेयर बाजार में रोज मर्रा की

उठा-पटक में जीने वाला कोई दलाल विशेषज्ञ देखता है। हमारी राय में ये तात्कालिक कारक ज्यादा से ज्यादा किसी पिस्तौल के घोड़े के समान है जो कि अन्दर पड़े कारतूस के विस्फोट की शुरूआत करवा देता है हमारी नजर में इन तात्कालिक कारकों में से कुछ ने, और एक हद तक सभी ने अपनी-अपनी बारी में उछाल या तेज गिरावट को 'ट्रिगर' किया। पूंजीपति वर्ग के संजीदा विश्लेषक जानते हैं कि ऐसे तात्कालिक कारकों का बहुत कुछ किया नहीं जा सकता है क्योंकि ये नहीं तो इसी प्रकार के कोई और कारक आने वाले दिनों में फिर सक्रिय हो ही जायेंगे, कि ऐसी तात्कालिक घटनाओं को रोका नहीं जा सकता है। इसलिए ये संजीदा विश्लेषक वे कदम उठाने की बात करते हैं जिनसे कि शेयर बाजार को बुनियादी स्तर पर नियंत्रित किया जा सके; या तो शेयर बाजार के बारूद में सीलन पैदा कर दी जाय या फिर उसके बुनियादी तत्वों गन्धक, पोटाश आदि को इकट्ठा ही न होने दिया जाय। वे जिन छः-सात सुधारों की वकालत करते हैं वे इस प्रकार हैं-

■ 'डे-ट्रेडिंग' को पूर्णतः समाप्त किया जाय। स्टॉक एक्सचेन्ज इस बात को सुनिश्चत करें कि किसी भी वित्तीय उपकरण (किसी भी प्रकार की प्रतिभूति या डेरिवेटिव) की बिक्री स्टॉक एक्सचेन्ज की रजिस्ट्री में बेचने वाले का नाम दर्ज होने के उपरांत ही हो। इसके साथ ही साथ खरीदार का नाम रजिस्ट्री में तब ही दर्ज हो जब उसका पैसा स्टॉक एक्सचेन्ज में पहुंच जाय।

■ शेयर बाजारों में सट्टेबाजी को निरुत्साहित करने के लिए सरकार इसमें होने वाले सौदों पर कर तंत्र का शिकंजा कसे। अल्पकालिक पूंजी वृद्धि कर (Short term capital gains tax) की दर को आम तौर पर बढ़ाया जाय। ऐसे वित्तीय उपकरण जिनसे बाजार में अस्थिरता ज्यादा बढ़ती है मसलन 'स्टाक फ्यूचर्स' पर इसे विशेषतौर पर बढ़ाया जाय। दीर्घकालिक पूंजी वृद्धि कर (Long term capital gains tax) को पुनः लागू किया जाय हालांकि इसे हल्का रखा जाय ताकि ऐसा न हो कि दीर्घकालिक निवेशों में निवेशकों की दिलचस्पी ही घटने लगे और वे सट्टेबाजी की ओर मुखातिब हो जायें।

■ भांति-भांति के 'स्टॉक फ्यूचर्स', जिनकी गिनती अब 170 से ऊपर पहुंच चुकी है और जो कि डेरिवेटिव्ज में होने वाले कुल कारोबार के 60% बनते हैं, को प्रतिबंधित कर दिया जाय। शेयर बाजारों में प्रचलित वित्तीय उपकरणों (Financial instruments) में ये सबसे ज्यादा चंचल हैं। इस संदर्भ में एक दिलचस्प तथ्य यह है कि भारत के शेयर बाजारों मे डेरिवेटिव्ज व्यापार की सिफारिश करने वाली एल.सी गुप्ता कमेटी ने भी 'स्टॉक फ्यूचर्स' डेरिवेटिव्ज की स्थापना का विरोध किया था।

■ 'ऑफ-शोर-सेंटर्स' में पंजीकृत FII को भारत के शेयर बाजार में कारोबार करने की अनुमति न दी जाय। 'हेज्ज फंड्स' के विशिष्ट प्रवर्ग में आने वाली FII, भले ही वे किसी 'ऑफ-शोर-सेंटर' में आधारित न हों, को भी भारत के शेयर बाजारों में कारोबार करने की अनुमति न दी जाय। जनवरी 2006 में औद्योगिक जगत के कुछ विशेषज्ञों ने अनुमान लगाये थे कि भारत में विदेशी निवेशकों के पास जितने कम्पनी शेयर हैं उनमें से 25 -30 % 'हेज्ज फंड्स' के पास हैं। बातें ये भी चल रही हैं कि इस गिरावट के शुरू में इन्होंने इन "अति -मूल्य वर्धित" शेयरों को बेचकर या तो पैसा डेरिवेटिव्ज में लगाया है या ये उसे लेकर अमरीका पलायन कर गये हैं।

जो विशेषज्ञ भारत के शेयर बाजारों में स्थायित्व पैदा करना चाहते हैं उनमें से कइयों का 'हेज्ज फंड्स' का प्रबल विरोधी होने के पर्याप्त आधार हैं। उनकी मुख्य दलील यह है कि भारत के संकीर्ण (thin) व छिछले (Shallow) कम्पनी शेयर बाजार को रातों-रात बड़ा और गहरा तो नहीं किया जा सकता है। कि इन तथ्यों को रातों-रात बदला नहीं जा सकता कि सेन्सेक्स की मात्र 30 कम्पनियां ही बाजार पूंजीकरण (Market captalization) के 70 % का प्रतिनिधित्व करें या फिर निफ्टी की 50 कम्पनियां ही 4/5 बाजार पूंजीकरण का प्रतिनिधित्व करें। भारत के शेयर बाजार जमाने से ऐसे चले आ रहे हैं और निकट भविष्य में ये गहरे एवं झटके झेलने लायक (Shock aborbent) नहीं बनाये जा सकते हैं। मगर जो चीज की जा सकती है वह यह कि इन्हें झटकों से बचाया जाय। अतः बड़े झटके देने वाली शक्तियों (मसलन 'हेज्ज फंड' जो कि उधार लिये हुए पैसे पर ही मुख्य कारोबार करते हैं और जो किसी भी तरह की पारदर्शिता नहीं बरतते) को भारत के शेयर बाजारों के बाहर रखा जाय।

■ 'शॉर्ट सेलिंग' (Short Selling) को कानूनी वैधता प्रदान करने के जो भी प्रयास हो रहे हैं उन्हें निरस्त किया जाय। अभी भारत के शेयर बाजारों में 'डे-ट्रेडिंग' एवं 'मार्जिन ट्रेडिंग' की बदौलत अघोषित 'शॉर्ट-सेलिंग' चलती रहती है। 'शॉर्ट सेलिंग' का मतलब होता है कि बेचने वाला उस मात्रा में किसी चीज को (एक निश्चित दाम पर) बेचने का अनुबंध कर ले जितनी उसके पास हो ही न। वह खरीदार से पैसा ले ले और फिर बाजार में उसे जुटा कर पूरा करके हस्तांतरित कर दे। 'शॉर्ट-सेलिंग' में तब तक कोई दिक्कत नहीं आती है जब तक कि अनुबंधित चीज सस्ते में मिल जाय,

लेकिन अगर उसके बाजार में दाम चढ़ जायें तब भुगतान समस्यायें खड़ी हो जाती हैं और यदि ऐसी घटनायें बड़े पैमाने पर हों (बार-बार या बड़े सौदों में) तो पूरा शेयर बाजार अस्थिर हो जाता है।

शेयर बाजार के भालू (Bears) जब बाजार की गिरती कीमतों में भी करोड़ों कमाते हैं तो वे दरअसल एक तरह की 'शॉर्ट-सेलिंग' ही करते हैं। वे अपने ग्राहकों को शेयर दिलाने के लिए उन्हें बाजार के विभिन्न दलालों से शेयर उधार मांग कर बेच देते हैं। और फिर जब दाम गिरते हैं तो वे सस्ते में उसी कम्पनी के शेयर खरीदकर दलालों को उनकी परिसंपत्तियां वापिस लौटा देते हैं। इस उधार के लिए दलाल अपना कमीशन वसूलते हैं और भालू सारे खर्चे काट कर अंतर (margin) जेब में डालते हैं। किन्हीं अनुकूल स्थितियों में भालू गुट बना कर "कृत्रिम" तौर पर कीमतें गिरा भी लेते हैं।

शेयर बाजार के संरचनागत सुधार के आकांक्षी न केवल 'शॉर्ट-सेलिंग' को कानूनी वैधता प्राप्त होने से रोकना चाहते हैं, बल्कि वे तरह-तरह की अघोषित 'शॉर्ट-सेलिंग' को भी ज्यादा से ज्यादा सीमित कर देना चाहते हैं।

■ रुपये को पूर्ण रूपेण परिवर्तनीय (अर्थात् स्थानीय भारतीयों एवं भारतीय कारपोरेट घरानों/संस्थाओं के लिए पूंजीगत खाते में परिवर्तनीय) न होने दिया जाय। ऐसा हो जाने पर भारतीय शेयर बाजार के साथ अंतरगुम्फन गुणात्मक अर्थों में बढ़ जायेगा और विदेशी शेयर बाजारों की हर कंपन यहां कभी सिहरन पैदा करेगी तो कभी हड़कम्प।

■ शेयर बाजार 'सौदा निपटारा अवधि' (Settlement Period) को T+ 2 प्रणाली पर संचालित करते हैं। मगर भारत के बैंक इतने तेज तर्रार नहीं हैं। वे एक खाते से दूसरे खाते में पैसा हस्तांतरित करने में इससे ज्यादा समय लगा देते हैं। अतः भुगतान समस्यायें खड़ी हो जाती हैं समस्या का समाधान यह है कि बैंकों को कंप्यूटरीकृत किया जाय एवं उनकी कार्यप्रणालियों का आधुनिकीकरण किया जाय।

पूंजीवादी विश्लेषकों की उक्त सिफारिशों को लागू करने पर भारत के शेयर बाजारों में दीर्घकालिक स्थायित्व पैदा किया जा सकता है या नहीं, इस प्रश्न से जूझने के पहले हम इस बात पर अपना मत प्रकट करना चाहेंगे कि शेयर बाजारों में विगत वर्षों के जबरदस्त उछाल और मई 2006 के मध्य से तीखी गिरावट के पीछे हमारी नजर में क्या कारण रहे हैं।

शेयर बाजारों में एक आम उछाल 1991-92 से ही देखा जा रहा था। हम पहले ही अर्ज कर चुके हैं कि इसकी मुख्य प्रेरक शक्ति वे नव उदारवादी नीतियां हैं जो 1991 से एक के बाद एक लागू की जा रही हैं। इस आम उछाल के भीतर सन 2003 की शुरूआत से एक तीखी उछाल दर्ज की गयी है (देखें, लेखाचित्र-1)। आम उछाल के भीतर इस तीखी उछाल को प्रेरित किया है विदेशी संस्थागत निवेशकों ने। भारतीय शेयर बाजारों में उनकी दिलचस्पी के कारण सेन्सेक्स/निफ्टी को जो उछाल मिला उसने भारतीय निवेशकों (संस्थागत एवं गैर संस्थागत, दोनों) को आर्कषित किया जिन्होंने अपनी बारी में उछाल को और वेग प्रदान किया। लेखाचित्र-2 काफी स्पष्टता से इस तथ्य को उजागर करता है कि कैसे देश में FII निवेश की बढ़ती मात्रा के साथ सेन्सेक्स ऊपर चढ़ता गया है। FII, जिनके नेतृत्व में यह उछाल आयी, को भारत के आम नव उदारवादी संदर्भ के भीतर दो प्रमुख कारकों ने प्रेरित किया-एक था डालर के सापेक्ष रुपये की चढ़त, और दूसरा था दीर्घ कालिक पूंजी वृद्धि कर का समाप्त किया जाना। मार्च 2003 में डालर 48.395 रुपये के उच्च स्तर पर था और 2005-06 में 43.5 - 44.5 रुपये के बीच मंडराता रहा। डालर के सापेक्ष रुपये की चढ़त FII's के लिए फायदेमंद है क्योंकि निवेश अवधि की समाप्ति पर डॉलर के सस्ता होने मात्र से वे ज्यादा अमीर हो जाते हैं। ऐसे ही मार्च 2003 में आम बजट पेश करते समय भारत के वित्त मंत्री ने कहा था कि वे शेयर बाजारों के कारोबार पर लगने वाले दीर्घकालिक पूंजी वृद्धि कर को समाप्त कर रहे हैं। भाजपाई वित्त मंत्री की इस छूट को उनके कांग्रेसी वारिसों ने जारी रखा। इस अहम् नीतिगत निर्णय ने देश के भीतर और बाहर के निवेशकों को शेयर बाजारों में निवेश करने के लिए प्रेरित किया। आम नव उदारवादी माहौल के साथ-साथ सन् 2003 के पूर्वार्द्ध से सक्रिय इन दो मुख्य कारकों का संयोग शेयर बाजारों में पिछले तीन-सवा तीन वर्षों के जबरदस्त उछाल के लिए जिम्मेदार है।

मई 2006 के मध्य से शुरू हुई तीखी गिरावट की जड़ में जो बात है, वह तो यही है कि शेयर बाजारों की आभासी पूंजी का गुब्बारा कभी भी किसी मामूली कील के आघात से ही पिचकना शुरू हो सकता है। और फिर भारत के शेयर बाजारों में पिछले तीन वर्षों की तीखी चढ़त से हैरान अनेक पूंजीवादी पर्यवेक्षक भी इन्हें "जरूरत से ज्यादा गरम" या "अति मूल्य वर्धित" बताने लगे थे। इस गुब्बारे को पिचकाने वाली कीलें थीं-'लंदन मेटल एक्सचेन्ज' में लोहे के दामों में तेज गिरावट, यह अफवाह कि संयुक्त राज्य अमेरिका का 'फेडरल रिजर्व बोर्ड' ब्याज दरें बढ़ाने जा रहा है, भारत के वाणिज्य मंत्रालय का एक सर्कुलर कि संस्थागत निवेशकों में से कइयों को व्यापारी माना जायेगा और इस प्रवर्ग में डाले जाने के बाद उन्हें अतिरिक्त कर देना होगा, सी.पी.एम. के दबाव में सरकार दीर्घ कालिक पूंजी वृद्धि कर पुनः लागू करेगी। मई 2006 के उत्तरार्द्ध में ये तमाम कारक लगभग एक साथ ही सक्रिय हुए। इनका सम्मिलित असर इतना था

कि शेयर बाजार में भगदड़ मच जाती। भगदड़ ने गिरावट को उत्तरोत्तर तेज किया । यहां भी गौर करने की बात है कि इस भगदड़ में भी FII ने अगुवाई की। वैसे इस संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता है कि इस गिरावट में शेयर बाजार के किन्हीं भालुओं के गुट (bear cartel) का भी हाथ हो, मगर अभी इस कारक की कोई पुष्टि नहीं हो पायी है।

शेयर बाजार को उसके बुनियादी स्तर, संरचनात्मक स्तर (संचालन के नियम-कायदे/कार्य प्रणाली/उपकरण एवं पूंजी का संघटन) पर नियंत्रित करने के लिए पूंजीवादी विश्लेषकों के सुझाव व्यवहार में कितने उपयोगी होंगे इसका अनुमान लगाया जा सकता है। इनकी उपयोगिता बहुत ही सीमित एवं अल्प काल के लिए होगी, यह बात काफी विश्वास के साथ कही जा सकती है। हमारे पास इनके प्रति ऐसा तिरस्कार भरा रवैया रखने का ठोस आधार है।

संरचनागत सुधार के इन सारे सुझावों में जो आम तत्व है वह यह कि ये इस परिकल्पना पर आधारित हैं कि शेयर बाजार के संकट उसकी ही अपनी बनावट के कारण पैदा होते हैं या फिर ज्यादा से ज्यादा ये वृहद वित्तीय प्रणाली की किसी तकनीकी कमी अथवा नीतिगत खोट की बदौलत अस्तित्व में आते हैं। इसी कारण से जो समाधान सुझाये जाते हैं वे शेयर बाजारों की विशिष्ट संरचना में परिवर्तनों तक सीमित होते हैं या फिर वृहद वित्तीय प्रणाली में किसी नीतिगत अथवा तकनीकि परिवर्तन तक सीमित होते हैं। यह परिकल्पना अपने आप में ही गलत है। शेयर बाजार के सारे संकट मात्र शेयर बाजारों की विशिष्ट संरचना या वृहत वित्तीय प्रणाली तक सीमित नहीं होते हैं। ऐसा भी होता है कि संकटों की जन्म स्थली समग्र पूंजीवादी अर्थव्यवस्था हो और वे शेयर बाजार में भी अभिव्यक्त हो रहे हों। समग्र पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के स्तर के संकट भी दो प्रकार के होते हैं। एक वे जिनका समाधान पूंजीवाद के भीतर हो जाता है। दूसरे, वे जो समग्र अर्थव्यवस्था के भी संरचनागत संकट होते हैं, जिनका समाधान समग्र पूंजीवादी तंत्र या उसके एक हिस्से के विनाश की मांग करता है। ये पूंजीवादी व्यवस्था के आम संकट (General crisiS) कहलाते हैं।

समग्र पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की संरचनागत बनावट में ही ऐसे अंतरविरोध निहित होते हैं जो कि उसे आम संकट की ओर धकेलते हैं। मार्क्स का कहना है-

> *" पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली के अंतर्गत आबादी की सापेक्षता में विकसित होने वाली असीम उत्पादिता, और पूंजीगत-मूल्यों की (केवल उनके भौतिक तत्व की नहीं) चाहे उसी अनुपात में न सही-वृद्धि, जो आबादी की तुलना में कहीं अधिक तेजी के साथ होती है, प्रसारमान संपदा की सापेक्षता में निरंतर संकीर्ण होते उस आधार के विरुद्ध जाती है, जिसके लिए यह असीम उत्पादिता काम करती है। वे उन अवस्थाओं के भी विरुद्ध जाती हैं, जिनके अंतर्गत यह स्फीतिमान पूंजी अपने मूल्य की संवृद्धि करती है। इसी से संकट पैदा होते हैं। "*
>
> *(पूंजी, खण्ड-3, प्रगति प्रकाशन, मास्को, 1988, पृष्ठ -234)*

यह माना जा रहा है कि 1973 से ही विश्व पूंजीवादी अर्थव्यवस्था एक आम संकट में दाखिल हो चुकी है। पिछले तीन दशकों से विद्यमान इस संकट ने वैश्विक स्तर पर पूंजीवाद को ठहराव की अवस्था में फंसाया हुआ है। सापेक्षिक अर्थों में उत्पादक कार्यों में पूंजी निवेश के नये रास्ते खुल नहीं रहे हैं, बल्कि स्थिति यह है कि पहले से विद्यमान उत्पादन तंत्र का उसकी पूरी क्षमता पर उपयोग करने के लिए बाजार मौजूद नहीं हैं। ऐसी हालत में अस्तित्व में आने वाली मुद्रा-पूंजी का एक अच्छा खासा हिस्सा उत्पादक पूंजी में परिवर्तित नहीं हो पा रहा है। उसे निकासी के दूसरे रास्ते चाहिये। शेयर बाजार नाम का जुआघर इनमें से एक महत्वपूर्ण निकासी मार्ग एवं सोख्ता है। इसमें अच्छी-खासी मात्रा में मुद्रा-पूंजी पहुंचती है और समय-समय पर जब शेयर बाजार संकटग्रस्त हो जाते हैं तब बड़े पैमाने पर पूंजी एक हाथ से दूसरे में जाती है, उसका आभासी आकार सिकुड़ता है और कभी-कभीश मुद्रा अवमूल्यन जैसी स्थितियों में, मुद्रा-पूंजी स्वाहा भी होती है। शेयर बाजार में जो संकट उत्पन्न होते हैं उनमें से अनेक ऐसे हैं जिनकी जन्म स्थली "संकीर्ण होता आधार" व फैलती "प्रसारमान सम्पदा" या बढ़ते "पूंजीगत मूल्यों" का गहराता अंतरविरोध है। इनका समाधान शेयर बाजार के भीतर स्थायी तौर पर नहीं हो सकता है। शेयर बाजार के भीतर इनका जो भी समाधान होता है वह बलात् होता है-मसलन तीखी गिरावट अनेक शेयर बाजारियों को कुछ समय के लिए पस्त कर देती है-और अल्पकालिक होता है। शेयर बाजार की अपनी विशिष्ट संरचना या वृहद् वित्तीय प्रणाली को कितना भी सुधार लिया जाय इनसे निजात नहीं है।

इसी संदर्भ में यह बात भी काबिले गौर है कि वैश्विक पैमाने के 1973 के बाद शुरू हुए आम संकट के काल में ही शेयर बाजारों ने वह वृहद एवं विविध रूप धारण किया है, जिससे हम आज रू-ब-रू हैं। आखिर नाना प्रकार के डेरिवेटिव्ज पिछले दो ढाई दशकों में ही तो अस्तित्व में आये हैं और पिछले एक दशक के भीतर ही तो ये दुनिया के शेयर बाजारों का प्रधान हिस्सा बने हैं। क्या यह मात्र संयोग है या फिर हमें मानना चाहिए कि वर्तमान शेयर-बाजार परिघटना, विश्व पूंजीवाद के इस आम संकट की पैदाइश है और उसकी अभिव्यक्ति भी है?

कार्ल मार्क्स हमें बता गये हैं :

"...उधार, क्रय तथा विक्रय क्रियाओं को अधिक समय तक जुदा रखने में सहायता देता है और इस प्रकार सट्टे की बुनियाद का काम देता है।" (मार्क्स; पूंजी, खण्ड -3, प्रगति प्रकाशन, मास्को, 1988, पृष्ठ -384)

तब शेयर बाजारों में संरचनागत सुधारों के आकांक्षी लोगों के सामने मूल प्रश्न यह है कि 'क्या पूंजीवाद (एवं उधार प्रणाली) से मुक्ति पाये बगैर सट्टेबाजी से मुक्ति पायी जा सकती है?

□□□

टिप्पणियां :-

1. जॉर्ज सोरोस पूर्वी एशियाई संकट में अपनी भूमिका के लिए तो पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। मगर वे पहले कई ''महान'' कारनामों को अंजाम दे चुके हैं। सिम्बर 1992 में जॉर्ज सोरोस ने 10 अरब डालर की बाजी इस बात पर लगायी थी कि पाउंड-स्टर्लिंग अतिमूल्य वर्धित है और इसका अवमूल्यन होने वाला है। पाउंड-स्टर्लिंग की अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा के बतौर साख को बचाना बैंक ऑफ इंगलैण्ड का दायित्व था। बैंक ऑफ इंगलैण्ड ने कई बार ब्याज दरें बढ़ाई और इसकी गिरावट को रोकने के लिए 15 अरब पाउंड-स्टर्लिंग खरीदे। इसके बावजूद वह उसके अवमूल्यन को नहीं रोक पाया। पाउंड गिरा और जॉर्ज सोरोस ने 2 अरब डालर अपनी जेब में डाले!

2. हेज्ज फंड विशिष्ट किस्म के FII होते हैं। ये कोई स्थापित कम्पनियां या वित्तीय संस्थायें नहीं होती हैं। ये पार्टनरशिप फर्म होती हैं। इनकी मूल बात यही होती है कि ये उधार के पैसे पर अपना कारोबार करते हैं। इनकी दूसरी अहम् बात यह है कि ये किसी भी तरह की पारदर्शिता नहीं बरतते हैं। ये यह भी नहीं बताते हैं कि इन्हें उधार पैसा देने वाले बैंक, कंपनियां या व्यक्ति कौन हैं। अपने कारोबार में ऐसी गोपनीयता बरतने (पारदर्शिता न बरतने) का अधिकार इन्हें अमेरिका एवं अन्य देशों के कानून ने दे रखा है। इसके पीछे मूल दलील यही है कि इस गोपनीयता के बिना वे अपनी रणनीतियां नहीं बना सकते हैं और अपना कारोबार नहीं कर सकते हैं।

इनकी प्रकृति को समझने के लिए LTCM (Long term capital management) एक बढ़िया उदाहरण है। LTCM की मुख्य टीम में चार आदमी थे। एक, जॉन मेरीवेथर जो कि 1991 में अमरीका के ट्रेजरी-बोर्डों की जाली बिक्री के कारण ख्याति प्राप्त थे। दूसरे, डेविड मुलिन्स जो कि अमरीकी फेडरल रिजर्व बोर्ड के भूतपूर्व उप-सभापति थे। तीसरे, मायरोन शोल्स जिन्हें 'ऑप्सन्स के दाम निर्धारण' पर अपने शोधकार्य के लिए नोबल पुरस्कार मिल चुका था। चौथे, रोबर्ट मेरवोन जो इस टीम में दूसरे नोबल पुरस्कार विजेता थे। इन चार लोगों की मुख्य टीम ने अपने स्रोतों से 4.8 अरब डालर का संचय करके LTCM का पूंजी आधार तैयार किया। अगस्त 1998 मे जब इस हेज्ज फंड का दीवाला निकला तब इसके पास बैंकों एवं अन्य कम्पनियों के 200 अरब डालर जमा थे जिनसे इसने प्रतिभूतियां खरीदीं (ध्यान रहे कि उस वक्त भारत का कुल सकल घरेलू उत्पाद 300 अरब डालर के करीब था)। इस बात का मतलब हुआ कि LTCM के अपने पूंजी आधार एवं उधार का अनुपात 1 : 50 था! आगे LTCM ने 200 अरब डालर की प्रतिभूतियों को रेहन पर रख कर इसका 1.25 गुना धन उठाया जिससे वह 1998 में सट्टेबाजी कर रही थी। LTCM का भट्टा तब बैठा जब अगस्त 1998 में रूस ने अपने कर्ज अदा करने में असमर्थता जता दी और परिणाम स्वरूप रूबल का भारी भरकम अवमूल्यन हो गया।

एक कम्पनी का रूप न ग्रहण करने के चलते और कुछ तिकड़मबाजों की एक छोटी सी प्रबंधकीय टीम द्वारा संचालित होने के चलते हेज्ज फंड बेहद खतरनाक होते हैं। वे बिजली की गति से पैसा लगाते है और निकालते हैं। बहुचर्चित जॉर्ज सोरोस भी हेज्ज फंड चलाते रहे हैं। हेज्ज फंड आमतौर पर "आरबिट्रेज" (arbitrage) विशेषज्ञ होते हैं। यानी कि वे दुनिया के शेयर बाजारों पर पैनी नजर रखते हैं और शेयरों अथवा अन्य वित्तीय उपकरणों के दामों में जहां भी अंतर पाते हैं, वे एक जगह से वित्तीय उपकरण खरीद कर दूसरी जगह बेचकर पैसा बनाते हैं। ऐसा वे अपने वैश्विक चरित्र एवं बैंकों में अपनी पहुंच की दम पर कर पाते हैं।

-o- -o- -o- -o- -o- -o- -o- -o- -o-